



शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काट्टु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/7008 ISSN No. 2456-625 X

वर्ष 1

अंक 3

त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका

10 जुलाई 2017

		इस अंक में	
मुख्य संपादक डॉ.पी.लता		संपादकीय	3
प्रबंध संपादक डॉ.एस.तंकमणि अम्मा		मीठी बोली का जादू - डॉ.एन.ई.विश्वनाथ अय्यर	5
सह संपादक प्रो.सती.के		'चेम्मीन' नामक मलयालम - प्रो.(डॉ).एन सुरेश	7
डॉ.एस. लीलाकुमारी अम्मा श्रीमती वनजा.पी		उपन्यास का 'मछुआरे' शीर्षक हिन्दी अनुवाद: एक झॉक	
संपादक मंडल प्रो.एस.कमलम्मा डॉ.जी.गीताकुमारी डॉ.बिन्दु.सी.आर डॉ.पूष्पम्मा.डी डॉ.षीना.यू.एस डॉ.सुमा.आई डॉ.एलिसबत्त जोर्ज डॉ.दिव्या.वी.एच डॉ.कमलानाथ.एन.एम डॉ.अश्वती.जी.आर राखी.एस.आर रंजिता राणी पार्वती चन्द्रन सिन्धु.वी.जे		सही उत्तर चुनें - डॉ.पी.लता	10
		भूमंडलीकरण, समाज, संस्कृति और कविता - डॉ.बाबू जोसफ़	11
		हिन्दी की समकालीन महिला - डॉ.पी.के. प्रतिभा	17
		आत्मकथाएँ	
		गिरमिटिया मज़दूरों की - डॉ.सिन्धु.एस.एल	24
		समस्याएँ- 'पथरीला सोना' के संदर्भ में	
		अस्स्योत्तर महिला कहानीकारों - डॉ.जयश्री.ओ	30
		की कहानियों में चित्रित नारी के बदलते परिवेश	
		प्रथम विज्ञान काव्य- 'कल्पांतर'- डॉ.धन्या.एल	35
		कबीर और सहज योग - डॉ.लक्ष्मी.एस.एस	39
		प्रगति-प्रयोगवादों के हस्ताक्षर: - डॉ.रंजीत रविशैलम	42
		मुक्तिबोध	
		पुस्तक समीक्षा - डॉ.एस.तंकमणि अम्मा	45
		- डॉ.पी.लता	46
		केरल की हिन्दी कवयित्री - डॉ.पी.लता	48
		स्वर्गीय डॉ.जी.कमलम्मा	

सूचना : पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के हैं। उनसे संपादक तथा प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

शोध सरोवर पत्रिका 10 जुलाई 2017

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्रकाशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ डी.वी.सुरेख ई.एन. फोण्ट में वर्ड या पेजमेकर फाइल में भेजें। रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाईल नंबर और ई-मेल पता भी अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक
डॉ.पी.लता
'शोध सरोवर पत्रिका'

मूल्य : एक प्रति रु. 30/-
वार्षिक शुल्क रु.120/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य। फोन : 0471 - 2332468, 9946253648

ई-मेल : dr.pletha@yahoo.com

बहुभाषा भाषी भारत देश में 'हिन्दी' का महत्व असंदिग्ध है। स्वतंत्रता - संग्राम को अग्रसर कराने में यहाँ हिन्दी भाषा ने अहम् भूमिका निभायी। सन् 1857 में स्वतंत्रता - संग्राम की असफलता के बाद विभिन्न भाषा - भाषी भारतीयों को स्वतंत्रता की आवश्यकता समझाने और एकता के सूत्र में बाँधने के लिए एक भाषा की आवश्यकता पड़ी। 'ब्रह्म समाज' के प्रवर्तक श्री केशवचन्द्र सेन बंगाल के थे और उन्होंने 'सुलभ समाचार' नामक बंगला पत्र में सन् 1873 में यों लिखा - "यदि भाषा एक न होने पर भारतवर्ष में एकता न हो तो इसका उपाय क्या है? समस्त भारत वर्ष में एक भाषा का प्रयोग करना इसका उपाय है। इस समय भारतवर्ष में जितनी भाषाएँ प्रचलित हैं, उनमें हिन्दी भाषा प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। इस हिन्दी भाषा को यदि भारतवर्ष की एकमात्र भाषा बनायी जाए तो अनायास ही यहाँ एकता संपन्न हो सकती है।" इस प्रकार हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का विचार सर्वप्रथम बंगाल में उद्भूत हुआ। बंगला साहित्यकार बंकिमचन्द्र चाटर्जी तथा कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टागोर ने भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का समर्थन किया। 'आर्य समाज' के संस्थापक श्री. दयानन्द सरस्वती की मातृभाषा गुजराती थी। वे पहले संस्कृत में व्याख्यान देते थे और

श्री केशवचन्द्र सेन से प्रभावित होकर हिन्दी में व्याख्यान देने लगे। वे अपने भाषणों में लोगों को यह समझाते थे कि आर्यभाषा 'हिन्दी' प्रत्येक भारतीय को पढ़नी ही चाहिए। इस प्रकार 'आर्य समाज' के प्रचारवाले स्थानों में हिन्दी का सहज प्रचार हुआ।

सन् 1885 में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना के बाद विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं की स्वीकृति की भावना उत्पन्न हुई। इससे हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकारने का विचार प्रबल हुआ।

महात्मागाँधी के सभापतित्व में सन् 1917 में इन्दौर में संपन्न 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के आठवें अधिवेशन में 'राष्ट्रभाषा आन्दोलन' को बड़ा ज़ोर दिया गया और दक्षिण भारत - अहिन्दी क्षेत्र - में हिन्दी का प्रचार शुरू करने का निर्णय लिया गया। इससे सन् 1918 में मद्रास के गोखले हॉल में हिन्दी कक्षा आरंभ हुई। सन् 1927 में दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार - कार्य को 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के तत्वावधान से अलग करने का निर्णय लिया गया। इस निर्णय के अनुसार दक्षिण भारत में स्वतंत्र रूप से हिन्दी का प्रचार करने के लिए मद्रास (वर्तमान 'चैन्नै') में स्थापित संस्था है 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा।' सन् 1935 में इन्दौर में संपन्न

‘हिन्दी साहित्य सम्मेलन’ में महात्मा गाँधी की अध्यक्षता में अन्य हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों में भी व्यवस्थित रूप से हिन्दी का प्रचार करने का निर्णय हुआ। सन् 1936 में डॉ. राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में नागपुर में चलाये गये सम्मेलन के निर्णय के अनुसार 19 जुलाई 1936 को अन्य हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचारार्थ ‘राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा’, का गठन किया गया।

कुछ राष्ट्रप्रेमी व्यक्तियों के सतत परिश्रम से हिन्दी देशव्यापी भाषा हो गयी। भारत की संविधान सभा ने 14 सितंबर 1949 को हिन्दी को भारत की ‘राजभाषा’ के पद पर प्रतिष्ठित किया। आज भारत में प्रशासन, साहित्य, व्यापार, विज्ञान तथा तकनीक, जनसंचार माध्यम जैसे विविध क्षेत्रों में हिन्दी भाषा के माध्यम से कार्य किये जाते हैं। विदेशों में जानेवाले भारतीय हिन्दी माध्यम से परस्पर संपर्क करते हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य में उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति स्कूलों, कॉलेजों तथा केन्द्र सरकार के कार्यालयों में काम करते हैं। साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा तकनीकी विषयों पर हिन्दी माध्यम से शोध करके शोध प्रबंध प्रस्तुत किये जाते हैं। सभी साहित्य विधाओं में हिन्दी में मौलिक रचनाएँ की जाती हैं। यही नहीं, विविध भारतीय भाषाओं की रचनाएँ हिन्दी में अनूदित होने से सांस्कृतिक आदान - प्रदान तथा राष्ट्रीय अखंडता बनाये रखने के कार्य सहज ही निभाये जाते हैं।

जैसे भारत के प्रत्येक राज्य के निवासियों को अपनी ‘राज्यभाषा’ प्रधान है, वैसे प्रत्येक भारतीय को अपनी राष्ट्र भाषा तथा भारतीय संविधान में स्वीकृत राजभाषा ‘हिन्दी’ भी प्रधान है। अतः केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों को भाषा के विकास संबंधी कोई निर्णय लेते वक्त तथा तत्संबन्धी आदेश जारी करते वक्त वह केवल राज्य भाषा के विकास में सीमित न रहकर राष्ट्रभाषा ‘हिन्दी’ के विकास के अनुकूल भी होना चाहिए। छात्रों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को योग्य स्थान दिलाने तथा हिन्दी माध्यम से उच्च शिक्षा पाने को नयी - नयी शैक्षिक संस्थाएँ शुरू करने में अधिकारियों का ध्यान केन्द्रित रहना चाहिए।

हिन्दी आज भारीय भाषा ही नहीं, विश्वभाषा भी है। विदेशों में स्कूलों - कॉलेजों में हिन्दी पढ़ायी जाती है और हिन्दी पत्रिकाएँ निकाली जाती हैं। भारतीय भाषा हिन्दी को विदेशियों ने भी मन से स्वीकृत किया है, इससे हिन्दी का महत्व विदित होता है। भारत देश के एक सीमित प्रदेश की बोली मात्र रही हिन्दी का इतने व्यापक रूप से प्रचार - प्रसार होने के पीछे कई राष्ट्रप्रेमी व्यक्तियों का तन - मन - धन से समर्पित सेवा भाव है। यह अवबोध प्रत्येक भारतीय में हमेशा होना चाहिए और भारत की नयी पीढ़ी को तहे दिल से हिन्दी को अपनी भाषा समझके स्वीकारना भी चाहिए।

डॉ.पी.लता

मीठी बोली का जादू

• डॉ.एन.ई.विश्वनाथ अय्यर



(बहुभाषा पंडित, बहुआयामी साहित्यिक व्यक्तित्व संपन्न, कई राष्ट्रीय पुरस्कारों से विभूषित तथा ललित निबंधकार के रूप में बहुचर्चित हुए मेरे परम श्रद्धेय गुरुवर स्वर्गीय डॉ.एन.ई.विश्वनाथ अय्यरजी की तूलिका से निर्गत आलेख 'मीठी बोली का जादू' की पांडुलिपि मेरे पास थी, जिसे मैं अपने गुरुवर को श्रद्धांजली-स्वरूप 'शोध सरोवर' पत्रिका में छापती हूँ। - डॉ.पी.लता)

आदिकवि वाल्मीकि ऋषि ने भारत को श्रीमद् रामायण के रूप में एक अनुपम काव्यरत्न उत्तराधिकार में दिया। रामभक्त इसे अपने प्रभु की जीवन गाथा मानते हैं। वे इसमें वर्णित तारकमंत्र को सर्वोत्तम घोषित करते हैं। 'रामायण' मानव जीवन के लिए अनन्त शिक्षा देनेवाली कामधेनु भी है। जीवन का कोई प्रसंग ऐसा नहीं जिसमें रामायण मार्गदर्शन न करे। उदाहरणार्थ किष्किन्धाकांड में शरतकाल के उदय होने पर भी सुग्रीव की लापरवाही देख श्रीरामचंद्र लक्ष्मण को उसे स्मरण कराने भेजते हैं। लक्ष्मण रौद्ररस की मूर्ति- से किष्किन्धा के राजमहल में पहुंचते हैं तब उनकी सूरत देख वानरगण भयभीत हो उठते हैं। वे सुग्रीव को इस दृश्य से अवगत कराते हैं तो सुग्रीव भी आशंकित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें लक्ष्मण का सामना करने की हिम्मत नहीं होती। इसलिए वे तारा की शरण लेते हैं। वे उससे अनुरोध करते हैं कि तुम पहले जाकर लक्ष्मणकुमार को मधुर वचनों से मना लो। उसके बाद मैं उनकी सेवा में हाज़िर होऊँगा। तारा में कई

विशेषताएँ थीं। वह सुन्दर थी, वचनों में मधुर थी और तर्ककुशल भी थी। तारा ने सुग्रीव की प्रार्थना मान ली। उसने पहले जाकर लक्ष्मण का अभिवादन किया। लक्ष्मण ने सुग्रीव पर अपना सारा क्रोध उतारा। तारा इससे विचलित न होकर मधुर शब्दों में उत्तर देने लगी। उसने कहाना शुरू किया-

“नैनं लक्ष्मण वक्तव्यो नाव्यं परुषमर्हति।”
उसका तर्क था कि सुग्रीव शठ या कृतघ्न नहीं है। वह मानती है कि अपार दुःख के अनुभव के पश्चात प्राप्त सुख के भाववेश में सुग्रीव अवश्य कर्तव्य भूल गया है। लेकिन इसकी गुरुता कम करने वह विश्वामित्र का उदाहरण देती है कि घृताची में संसक्त विश्वामित्र ने प्राप्त काल को नहीं पहचाना। जब विश्वामित्र जैसे ऋषि से ऐसी भूल होती है तब वानर सुग्रीव जो जन्म से चपल होता है ऐसी भूल करे तो अचरज नहीं। आप सत्ययुक्त महापुरुष ठहरे। इसलिए क्रोध नहीं करते। मैं सुग्रीव की तरफ़ से आपसे क्षमा माँगती हूँ। आप क्रोध छोड़ें। तारा की यह अमृत - सी वाणी लक्ष्मण के क्रोध पर जब बरसती है तब उन्हें अपने क्रोध पर लज्जा आती है। उनका व्यवहार एकदम कोमल होता है। बाद में सुग्रीव से भी उनका वार्तालाप स्नेहपूर्ण निकलता है।

तारा और लक्ष्मण का यह संवाद प्रमाणित करता है कि 'मधुर वचन है औषधि कटुक वचन है तीर'। संसार के जीवन में हर आदमी को दूसरों से कितने ही प्रसंगों पर बातें करने की ज़रूरत पड़ती है। जो व्यवहार -कुशल है वह यथासंभव समुचित शब्दों का प्रयोग करता है। बातचीत की सफलता के कुछ मंत्र गिनाते हुए तमिल भाषा में कुछ सूक्तियाँ चलती हैं, जैसे-मेदुवाक पेशु (धीमी आवाज़ में

बोलो), इन्ध्यामाक पेशु (मीठे स्वर में बोलो), पेशामलिरुन्तुं पषकु (उत्तर दिये बिना चुप रहना भी सीखो) आदि। वार्तालाप के समय हमें बड़ी शांति से काम लेना चाहिए। अक्सर जब कोई हमें अप्रिय बात सुनाने लगता है तब हम उसकी बात तुरंत काटने लगते हैं। इससे दोनों का पारा तेज़ होता है। कभी तो बात लातों तक बढ़ती है और कभी मारपीट तक। उलटे शांति से काम लेने पर बुरी बात करनेवाला बोलते - बोलते स्वयं थक जाता है और गम जाता है। आलोचकों की जीभ पर ताला स्वयं लग जाता है।

मज़ाक में कहा जाता है कि ब्याह के बाद प्रथम तीन महीनों तक पति बोलता है और पत्नी सुनती है। अगले तीन महीनों तक पत्नी बोलती है और पति सुनता है। इसके बाद दोनों एक साथ बोलते हैं तो पड़ोसी सुनते हैं।

संस्कृत भाषा में अनेक सूक्तियाँ सुलभ हैं। मधुर वचन के विषय में एक प्रसिद्ध सूक्ति सुनिए -
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे
जिह्वाग्रे मित्र बान्धवाः
बंधनं चैव जिह्वाग्रे
जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम्।”

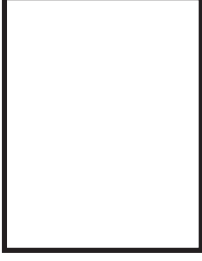
आदमी की वाणी में बहुत कुछ संभव है। उसकी जीभ की नोक पर शब्द रहता है। अर्थात् वह शहद में घुली मीठी बातें करके श्रोता को अपने वश में कर सकता है। इस तरह जो आदमी वाणी में मधुर है उसे अनेक मित्र और बंधुजन आसानी से मिलते हैं। जो अप्रिय या रूखी बात कहा करता है उससे लोग विमुख रहते हैं। जो सज्जन बिना सोचे - समझे खतरे के कारण बुरे शब्द कहा करता है उसे कभी बंधन मिलता है। राजनीति के क्षेत्र में ऐसी घटनाएँ सुलभ हैं। यदि उसकी वाणी शासकों को बहुत अरबरे तो संभव है कि उसको मृत्युदंड तक मिले।

एक सरस कवि ने अविवेकी वक्ता को व्यंग्यपूर्ण पद से याद करायी कि गलत बात कितनी खतरनाक है। इस पद में दाँत अपनी सहवर्ती जीभ से प्रार्थना करता है कि 'हे जीभ ! तुम बहुत मत बोलो। बकबक मत करो। कारण यह है कि जब तुम गलत - गलत बातें बकाओगी तब श्रोता को क्रोध आएगा और वह गाल पर ऐसा थप्पड़ मारेगा कि दाँत उखड़कर नीचे गिरें। अपराध तो तुम करोगी, पर दंड स्थानभ्रंश के रूप में मुझे मिलेगा।

संस्कृत में वचनों के उचित प्रयोग के विषय में दो शब्द प्रयुक्त होते हैं - वाचाल एवं वाग्मी। वाचाल तो बहुत लंबा बोल सकता है। लेकिन इसकी गैरंटी नहीं कि सारे श्रोता उसकी पूरी बात ध्यान से सुनें। वाग्मी तो वह है जो मित और सार वचन बोले। याने नपे-तुले और ठोस शब्द जो कहते हैं उनकी बात पर लोग ध्यान देते हैं। इसके उदाहरण के रूप में कहा जाता है - अदालत में मुद्दई-मुद्दाव के वकील जब पैरवी करते हैं तब एक वकील अपने दोस्त को खुश रखने मुक्का मार - मारकर बोलता है। दूसरा वकील तो सिर्फ ज़रूरी बातें कानून पर ज़ोर देते हुए धीरे से बताता है। उसीकी जीत होती है।

कुछ लोग बहस करने में विशेष कुशल होते हैं। उन्हें हाज़िर जवाब कहा जाता है। मनोरंजन और व्यंग्य करने में वे अनुपम रहते हैं। भारतीय साहित्य में नाटकों में विदूषक ऐसा ही पात्र होता है। हम अकबर और वीरबल के चुटकुलों में इसके उदाहरण पाते हैं। वीरबल के मशहूर चुटकुलों में एक यह भी है। अकबर एक बार वीरबल की बात सुनकर गुस्से में आये और बोले कि वीरबल तुम गधे हो। वीरबल ने अपनी प्रतिक्रिया दी कि गधे के भाई-बाप भी गधे ही हो सकते हैं।

◆ पूर्व प्रोफेसर और अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कोच्चिन विश्वविद्यालय)



‘चेम्मीन’ नामक मलयालम उपन्यास का ‘मछुआरे’ शीर्षक हिन्दी अनुवाद : एक झाँक . प्रो. (डॉ). एन. सुरेश

अनुवादक चाहे जितना भी माहिर और काबिल क्यों न हो, अपने उद्यम में सौ फ्रीसदी कामयाबी हासिल होना नामुमकिन ही है। अनुवाद-कार्य के दौरान अनुभूत तथा संभावित समस्याओं के अनेक व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक आयाम होते हैं जिनमें मूल एवं लक्ष्य भाषाओं की आपसी गोत्रीय भिन्नता के अलावा मूल रचना में, या फिर स्रोतभाषा में अंतर्भूत सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, रीति-रस्म-विश्वास- अंध विश्वास संबंधी संदर्भ भी शामिल होते हैं। स्रोत-लक्ष्य भाषा भाषी समाजों के भाषाई व्यवहार में उक्त संदर्भों में होनेवाले व्यतिरेक अनुवाद-कार्य को और भी जटिल एवं दूभर बना देते हैं। अनुवाद कर्य में अनुवादक का रुझान, संबद्ध भाषाओं से उनकी निकटता, उनमें उनकी दक्षता व सामर्थ्य अनुवाद में रुचि और हुनर आदि न जाने कितनी बातें होती हैं जो कि अनुवाद कर्य की गति में अड़चन पैदा करने में विलक्षण भूमिकाएँ निभाती हैं।

मूल कृति व कृतिकार के साथ ईमानदार होना अनुवादक में अपेक्षित सबसे अनिवार्य गुणों में से एक है। असल में अनुवादक को चाहिए कि वह मूल कृति के भावपक्ष से लेकर अभिव्यक्ति पक्ष तक के समस्त पहलुओं को समझे, जाने - परखे और उसके आधार पर अनुवाद की रीति तैयार करे। अनुवाद करते हुए अनुवादक को चाहिए कि वह न कुछ जोड़े, न कुछ छोड़े। ऐसी स्थिति में अनुवादक के लिए आवश्यक

मान लिया जाता है कि जिस रूप में मूल कृति है उसी रूप में अनुवाद में पुनर्गठित करे। तब तो अनुवादक को स्रोत और लक्ष्य दोनों भाषाओं की भाषाई, सांस्कृतिक, अभिव्यक्तिपरक विशेषताओं के साथ-साथ मूल कृति के नब्ज को भी पकड़ ले।

अंचल विशेष की सभ्यता, संस्कृति एवं परिवेश अपना अलग अस्तित्व बनाए हुए हैं। देश-विदेश की भाषा और साहित्य में आंचलिक एवं जनपदीय जीवन के विलक्षण तत्वों पर केंद्रित रचनाओं का प्रचुर प्रणयन हुआ है और हो भी रहा है जिसके ज़रिए आंचलिक रीति-रिवाज़, धार्मिक तथा नैतिक विश्वासों एवं आस्थाओं के साथ - साथ रीतियों तथा लोकभाषाओं का ज्ञान भी अनुवाद करते वक्त इन भाषिक जानव्यातया एवं उनमें अंतर्भूत सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक विश्वासों को बारीकियों से अवगत होना ज़रूरी होता है। अन्यथा मूल रचना के बीज रूप सार तत्व को बिना क्षति पहुँचाए अनुवाद में उतारना मुमकिन नहीं होगा।

अगर मूल लेखक का उद्देश्य या आशय किसी अंचल विशेष के सामाजिक जीवन में सदियों से चले आ रहे रूढ़िबद्ध विलक्षण विश्वासों या अंधविश्वासों पर आधारित हो और रचना में तदनु रूप शिल्प - शैली का प्रयोग हुआ हो तो उसके अंतर्भाव को भली - भाँति पहचान लेना और यथासंभव सममूल्य आशय



एवं अभिव्यक्ति द्वारा उसे अनुवाद में अंतरण करना भी अनुवादक का दायित्व है।

पर मूल कृति की आत्मा का आवाहन करने लायक शब्दावली, शैली-प्रयोग आदि के लक्ष्य भाषा में उपलब्ध होने की स्थिति में भी अनुवादक की उदासीनता, असावधानी या लापरवाही की वजह से लक्ष्य भाषा से शब्दों या शैलियों का मनमाने ढंग से चयन करके अनुवाद कर डालने की नौबत आ जाती है तो वह अनुवाद के नीतिशास्त्र के खिलाफ़ है।

अनुवाद संबंधी ऐसी व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक समस्याओं की याद दिलानेवाले कई नमूनों से भरे एक अनुवाद का निदर्शन है भारत देश के सुदूर दक्षिण में स्थित केरल नामक द्राविड़ भाषा - मलयालम भाषा-भाषी प्रदेश के समुद्र तटवर्ती पुरक्काटु नामक गाँव के मछुओं की ज़िंदगी और आत्मा को करीब से देख - पहचान तथा महसूसकर उसे उसी रूप में उन्हीं की ही प्रांजल बोली में तकषि शिवशंकर पिल्लै नामक विश्व विख्यात साहित्यकार के लिखे हुए 'चेम्मीन' शीर्षक मशहूर मलयालम उपन्यास का 'मछुआरे' नामक हिन्दी अनुवाद।

मूल एवं लक्ष्य भाषाओं के जानकार किसी भी पाठक के दिमाग में ऐसा अहसास होना सहज है कि इस अनुवाद में अनुवादक ने पूर्ण रूप से न्याय नहीं किया है। किसी भी आँचलिक जन समुदाय की सांस्कृतिक जटिलताओं, संकीर्णताओं, विश्वासों को अभिव्यक्ति देनेवाली साहित्यिक कृतियों का किसी अन्य संस्कृति के ढाँचे में ढली ज़बान में अंतरण करते वक्त तत्संबन्धी विशेष शब्दावलियों, शैलियों आदि के चुनाव में सावधानी न बरतने पर संभावित अभिव्यक्तिपरक विचलन का निदर्शन है प्रस्तुत अनुवाद।

मूल के कुछ प्रयोगों तथा अनुवादक द्वारा किए

गए उनके अनुवादों का मिसाल के तौर पर उल्लेख करते हुए उनकी व्याख्या आगे पेश की जा रही है - "कोता एन्तो कार्यम् अरिञ्जु परयुन्नतुपोले तोत्री। एल्लावर्कुम् जिज्ञासयायि। एन्ताणवर परयुन्नतेनु चोदिच्चु। कोता ओन्न परञ्जुवच्चु। पेण्ण पेष्पयायिरिक्कुम्। वल्लविधो कटाप्पुरत्तुनिन्न् परञ्जयच्चामतियायिरिक्कुम्। वृद्धा नट्टुडिडप्पोयि।" (मूल - पृ.सं. 114)। मूल के इस उद्धरण के अनुवाद पर ध्यान दें- "ऐसा लगा कि कोता कोई बात जानकर बोल रही है। सबको सुनने की जिज्ञासा बढ़ गई। सबने कोता से ऐसा कहने का कारण पूछा। कोता ने कहा लड़की ने कुछ अनुचित काम किया हो और लोगों को उसे अपने तट से किसी तरह भेज देने की फ़िक्र हो गई होगी। यह चुनकर बुढ़िया चोंक गई।" (अनुवाद - पृ.सं. 134)।

अनुवाद सरसरी तौर पर ही दोषपूर्ण लगता है। यहाँ मूल के 'पेण्णपेष्पयायिरिक्कुम्' वाक्य पर केन्द्रीभूत करके या केंद्रबिंदु पर रखकर ही प्रस्तुत मूल उपन्यास की मूल विषय वस्तु या प्रधान कथावस्तु का विकास - परिणाम होता है। लेकिन अनुवादक ने इस मुख्य बिंदु को नज़रंदाज़ करके "लड़की ने कुछ अनुचित काम किया" करके ही इसका अनुवाद कर रखा। 'अनुचित काम' कोई भी हो सकता है, कुछ भी हो सकता है या किसी से हो सकता है। लेकिन 'पेण्णपेष्पयायिरिक्कुम्' वाक्य के प्रयोग से करत्तम्मा नामक मुख्य स्त्री चरित्र पर जो सामाजिक वर्जना का भाव अभिव्यंजित होता है, वह भाव अनुवाद में 'अनुचित काम किया हो' वाक्य से अभिव्यंजित नहीं होता है। यहाँ रूप एवं भाव दोनों स्तरों पर अनुवाद में विचलन हुआ है जिससे मूल रचना का उद्देश्य ही खंडित हुआ है। यही नहीं, मूल वाक्य में प्रयुक्त 'पेष्पा' शब्द का भी अपना रूढ़िबद्ध अर्थ होता है जिससे औरत के जारिणी

होने का संकेत मिलता है।

पुरक्काटु नामक सागर तटवर्ती अंचल के मछुआ लोगों के बीच यह रूढ़ विश्वास है कि अगर उनमें से कोई लड़की या औरत 'चरित्रहीन' या 'बदचलन' बन जाती है तो न केवल उस पर बल्कि समूचे मछुआ समुदाय पर सागर - माँ का प्रकोप पड़ेगा और नतीजा पूरी तबाही होगी। मूल उपन्यास के 'पेणुपेणुयारिकुम्' वाक्य का हिन्दी में अनुवाद 'लड़की ने कुछ अनुचित काम किया हो' न करके 'लड़की बदचलन होगी' कर दिया होता मुनासिब होता और मूल के अपेक्षित अर्थ एवं भाव के अधिक निकट होता। अनुवादक की लापरवाही ही यहाँ अनुवाद में दोष का कारण बना।

वैसे ही मूल पाठ के "चेंपनकुञ्जु ओरु क्षणम् ओरिटत्तुम् अटडिडियिरिक्कुक्कयिल्ला। एण्पेणुम् अयाळक्कु गौरवमाणु। आ उणर्वुम्, उशिरुम्, करुत्तुम् कोण्टु अयाळ आळुतन्ने मारिप्पोयि। अयाळ पण्य चेंपनकुञ्जाकान निश्चयिच्चिरिक्कुक्कयाणु। एल्लावरेयुम् एण्पोषुम् अयाळ कुट्टपेटुत्तिक्कोण्टिरिक्कुन्नु। पाप्पिक्कुञ्जु मुटिविनाशकारियाणु। अवळुटे निष्पलाट्टम् उण्टायप्पोळ मुतल नाशमाणु। अवळे कल्याणम् कषिक्कान निश्चयिच्च आ निमिप्पत्ते अयाळ शपिच्चु।" (मूल, पृ.सं. 157)। इसके अनुवाद में 'ओरुक्षणम् ओरिटत्तुम्' (पल भर भी कहीं भी) ; 'आ उणर्वुम्, उशिरुम्, करुत्तुम् कोण्टु' (उस फूर्ती, जोश और ताकत से) जैसे अंशों को अनूदित किये बना छोड़ दिया गया है। इन अंशों को छोड़कर असल में अनुवादक ने अनुवाद और मूल लेखक के साथ अन्याय ही किया है। सच में इन अंशों का हिन्दी अनुवाद करके अनूदित कृति में शामिल करने में कोई हर्ज नहीं था। सही अनुवाद इस प्रकार हो सकता था - "पल पर भी कहीं भी चेंपनकुञ्जु शांत नहीं बैठता उस फूर्ती, जोश और ताकत से वह स्वयं ही बदल गया है।"

अनुवाद में छूट गए ये अंश असल में 'चेंपनकुञ्जु नामक विभ्रान्त व्यक्ति के चरित्र-वैचित्र्य के द्योतक हैं। 'पाप्पिक्कुञ्जु मुटिविनाशकारियाणु' वाली मूल कृति की उक्ति को उसमें निहित कर्तृत्व शक्ति, यानि, 'तबाह करने की शक्ति' को पहचाने बिना अनुवादक जो है, 'सारी तबाही का कारण थी', ऐसा सपाट अनुवाद करके आश्वस्त हो गया, जब कि ऐसी कर्तृत्व क्षमतावाली शैली लक्ष्य भाषा में उपलब्ध थी ही। यानी, यहाँ अनुवाद 'सत्यनाशी है पाप्पी' कर दिया होता, तो मूल के साथ सममूलकता स्थापित हो जाती। वैसे ही, मूल कृति के वाक्य 'अवळुटे निष्पलाट्टम् उण्टायप्पोळ मुतल नाशमाणु' का हिन्दी तर्जुमा होना चाहिए था - "जब से उसकी परछाई पड़ने लगी तब से तबाही ही तबाही है।" जब कि अनुवादक ने अनुवाद में सरलीकरण की नीति अपनाते हुए उसे 'उसके नाते घर में घटती ही घटती होने लगी' रूप में अनुवाद कर रखा। यही नहीं, मूल कृति में चेंपनकुञ्जु की हताश दिमागी हालत को लेकर लेखक का कथन कि "अवळे कल्याणम् कषिक्कान निश्चयिच्च आ निमिप्पत्ते अयाळ शपिच्चु" का अनुवाद अनुवादक ने 'उस वक्त को उसने कोसा जब उसने उससे शादी करने का निश्चय किया' रूप में न करके इस रूप में अनुवाद किया कि 'असने उससे शादी करने का निश्चय किया, उसी का उसे दुख था।" - (अनुवाद, पृ.सं. 220)। असल में यहाँ चेंपनकुञ्जु की उस वक्त की अत्यंत विभ्रान्त एवं हताश दिमागी हालत की तीव्रता को समझने में अनुवादक शायद असफल हुई।

"घनमेरिय, आप्रमेरिय ओरु निशब्दता, आ मुरियिल निरञ्जु। एतु शब्दत्तिनु अतिने तकक्कान कषियुम्? पळनियुटे ओरु चोद्यम् अतिने तकर्त्तु।" (मूल - पृ.सं. 204)। यहाँ "पळनियुटे ओरु चोद्यम् अतिने तकर्त्तु" वाला अंश अनुवाद में गायब है। असल में उक्त प्रसंग में उस कमरे में व्याप्त

निशब्दता अथवा खामोशी जो है, पळनि और करुत्तम्मा, जो पति - पत्नी हैं, के मानसिक तनातनी एवं बेचैनी की तीव्रता को मापने का मापक है। अनुवाद में इस अंश का छूट जाने से मूल में अभिव्यक्त यथार्थ भाव की हानि हुई है।

सचमुच अनुवादक ने जानबूझकर ही अपनी सहूलियत के लिए मूल कृति के कई अपरिहार्य संदर्भों एवं अंशों को बिना अनुवाद किए छोड़ दिया है।

वस्तुतः उक्त अनुवाद में हुए अधिकतर अनुवाद दोष अनुवाद-प्रक्रिया में अनुवादक द्वारा स्रोत रचना में अंतर्लीन सांस्कृतिक, नैतिक, रिवाज़ी, रूढ़िगत आदि विभिन्न समाजशास्त्रीय अभिव्यंजनाओं में निहित तत्वों को ग्रहण करने में हुई लापरवाही या उदासीनता और फलस्वरूप अपनाई गई सरलीकरण की नीति का नतीजा है।

आधार ग्रंथ

1. चेम्मीन, तकषि शिवशंकर पिल्लै, 1956, प्रकाशक : साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघम्।
2. मछुवारे, भारती विद्यार्थी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

◆ (पूर्व प्रोफेसर हिन्दी विभाग)

निदेशक अनुवाद डिप्लोमा कोर्स,
केरल विश्वविद्यालय, कार्यवट्टम्।

फोन: 9349439544

“अखबार का मकसद सेवा होना चाहिए।
अखबारों में बड़ी ताकत है” - महात्मा गाँधी।
“हिन्दी प्रचार का कार्य दूरदर्शितापूर्ण है। इसका
सुपरिणाम आगे निकलेगा” - सुभाषचन्द्र बोस

सही उत्तर चुनें

डॉ.पी. लता

1. बचपन में किसका नाम 'रामबोला' था?
(अ) तुलसीदास
(आ) सूरदास
(इ) नाभादास
(ई) गोकुलनाथ
2. दोहा - चौपाई प्रबन्ध पद्धति में रचित रचना कौन - सी है?
(अ) कवितावली, (आ) विनय पत्रिका
(इ) जानकी मंगल, (ई) रामचरित मानस
3. तुलसीदास की माता का नाम क्या है?
(अ) रत्नावली, (आ) पार्वती
(इ) हुलसी (ई) बरवै
4. 'रामचरितमानस' किस भाषा में रची रचना है?
(अ) अवधी (आ) ब्रज
(इ) खड़ीबोली (ई) बुंदेली
5. 'विनय पत्रिका' किस भाषा की रचना है?
(अ) अवधी (आ) ब्रज
(इ) खड़ीबोली (ई) भोजपुरी
6. तुलसीदास के गुरु का नाम क्या है?
(अ) बिठ्ठलनाथ
(आ) रामानुज
(इ) रामानन्द
(ई) नरहरिदास

(शेष पृ.सं. 47 में)



भूमंडलीकरण, समाज, संस्कृति और कविता

• डॉ. बाबू जोसफ़

एक लंबे समय से हमारे सामाजिक विमर्श में वैश्वीकरण, नवपूँजीवाद, आर्थिक उदारीकरण, बाज़ारवाद एवं उपभोक्ता संस्कृति आदि संज्ञाएँ छाई हुई हैं। हमारे देश में भूमंडलीकरण केवल राजनीतिक व आर्थिक मुद्दों तक सीमित नहीं है, उसका एक सांस्कृतिक आयाम भी है। आज के दौर में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, साहित्यिक, आर्थिक, वैज्ञानिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में भूमंडलीकरण का प्रभाव पड़ा है। पूँजीवाद के विकास के साथ उसकी संस्कृति भी विकसित होती जा रही है। वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद, आर्थिक साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की संस्कृति इसी पूँजीवाद की देन है। बाज़ारवाद और उदारीकरण की इस दुनिया में मनुष्य का नागरिक न रहकर एक उपभोक्ता के रूप में परिवर्तित होने की स्थिति पर हिन्दी की समकालीन कविता में चेतावनी का स्वर मुखरित हो रहा है। जिन ताकतों ने हमारे समय को क्रूर, स्वार्थी एवं बाज़ारू बनाया है, उन्हीं ताकतों ने हमारी साहित्यिक रचनाओं को भी पाठकों से दूर कर दिया है। भूमंडलीकरण का समर्थन करनेवाले विद्वानों ने इतिहास के अंत के साथ संस्कृति और साहित्य के निषेध की घोषणा भी की है। कृष्णप्रताप सिंह के साथ हुई एक बातचीत में वरिष्ठ कथाकार काशीनाथ सिंह ने यह स्वीकार कर दिया कि हमारे समय की सबसे बड़ी चुनौती है 'भूमंडलीकरण'। उस बातचीत के दौरान उन्होंने यह भी कहा- "सोवियत संघ के विघटन के बाद दुनिया का नज़र ही बदल

गया है। अमेरिका ने, जिसे हम नवसाम्राज्यवादी कहते हैं, अपने हित में भूमंडलीकरण का सिद्धांत बना लिया है, तो हमने उदारीकरण के नाम पर उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर रखा है। सो, अपने देश में यह हो रहा है कि सरकार को चुनते भले हम हैं मगर वह सुनती अमेरिका की है या फिर भूमंडलीकरण के ताबेदारों- विश्वबैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोश और विश्व व्यापार संगठन - की। ब्रिटिश साम्राज्यवाद और अमेरिकी नव साम्राज्यवाद में एक बड़ा फ़र्क यह है कि ब्रिटिश लोग अपने उपनिवेशों में रहते थे जबकि नव साम्राज्यवाद हमारे देश में हमारे ही लोगों के मार्फत जैसी मनमानी चाहता है, कर रहा है।...मुझे लगता है कि इस समूची स्थिति पर नए सिरे से विचार करना चाहिए। कई लेखक और बुद्धिजीवी कर ही रहे हैं। हमारे समय की सबसे बड़ी चुनौती यह भूमंडलीकरण ही है और हिन्दी के लेखक अपने स्तर पर इससे जैसी मुठभेड़ करनी चाहिए, कर रहे हैं। जबसे विश्वग्राम बना है, क्षेत्रीय अस्मिताएँ अपनी पहचान के लिए परेशान हैं। आज का संकट यही है...बाज़ारीकरण के विरुद्ध भी हिन्दी संसार मुखर है क्योंकि उसे पता है कि और कोई रास्ता नहीं है, मुक्ति का मार्ग इधर से ही होकर गुज़रता है।" यह कितना मोहक और लुभानेवाला एहसास है कि आज हम विश्वग्राम (global village) में ज़िन्दा रहते हैं।

बाज़ार की तमाम चकाचौंधों के बीच जहाँ मानवीय संवेदना कुंठित हो रही है वहाँ हमारी भाषा,

हमारी प्रकृति, हमारी अस्मिता, हमारी पहचान, हमारी संस्कृति आदि सब कुछ हमसे छीन ली जा रही है। तब कविता इनके विरोध में आवाज़ उठाती है। कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने वर्षों पहले चेतावनी दी थी - “और अब/छीनने आये हैं वे /हमसे हमारी भाषा।/ अब, जब हम /हर तरह से टूट चुके हैं, /अपना ही प्रतिबिम्ब / हमें दिखाई नहीं देता,/अपनी ही चीख / गैर की मालूम पड़ती है,/एक आखिरी बयान/ जीने और मरने का /हम दर्ज कराना चाहते हैं /वे छीनने आये हैं, /हमसे हमारी भाषा।”¹ कवि ने देखा है कि हमारे पास बहुत कम वक्त शेष है, इसलिए एक गलत भाषा में गलत बयान देने से मर जाना बेहतर है, यही हमारी टेक है। मनुष्य अपनी पहचान, अपना व्यक्तित्व, अपनी अस्मिता और अपना सांस्कृतिक बोध अपनी भाषा के द्वारा ही अभिव्यक्त करता है। इसलिए वैश्वीकरण का प्रतिरोध भारतीय भाषा में लिखी रचना में ही संभव है। वैश्वीकरण उपनिवेशवादी अंग्रेज़ी भाषा के साथ विश्व में फैलता जा रहा है, इस भाषा में वैश्वीकरण एवं उपनिवेशवाद का घमंड है, हमारे सांस्कृतिक गौरव की अभिव्यक्ति नहीं है। इस रचना व जीवन विरोधी माहौल में वैश्वीकरण के जनविरोधी सब के विरुद्ध प्रतिरोध के स्वर की अनुगूँज हिन्दी की समकालीन कविता में सुनाई दे रही है। कवियों को ऐसा लग रहा है कि हमारी वर्तमान सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था में मनुष्य की स्वाधीनता और समानता दोनों खतरे में हैं। समकालीन जीवन में मनुष्यता के लिए तरह-तरह की चुनौतियाँ बढ़ रही हैं। हमारे जीवन्त मानवीय मूल्य महत्वहीन हो रहे हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से यकीन नष्ट होता जा रहा है। आम आदमी को इतना भयग्रस्त कर दिया गया है कि वह किसी नृशंस अत्याचार के खिलाफ़ कोई विरोध भी नहीं कर पा रहा है- “जब भावुकता

निरीहता का पर्याय मानी जा चुकी है, तब कुछ भी कहना एक नए जोखिम की तरफ़ जाना है। जो लोग जीवित हैं वे सिर्फ़ इसलिए कि दूसरों के रास्ते में नहीं हैं। रोज़ की घटनाएँ बताती हैं कि बुराइयों को न केवल सामाजिक स्वीकृति मिल रही है बल्कि वे एक तरह की प्रतिष्ठा का कारण भी बन रही हैं।”² आज का यथार्थ यही है। हिन्दी की समकालीन कविता इन चुनौतियों को महसूस करती है और अपने ढंग से इनका यथासंभव विरोध भी कर रही है। वर्तमान दौर की कविताएँ अपने समय के इसी यथार्थ की बारीक पड़ताल करती हैं। इसलिए ये कविताएँ पाठकों को कोई राहत नहीं देतीं, बल्कि बेचैनी एवं घबराहट पैदा करती हैं। हिन्दी के समकालीन कवियों ने अपने समय को, अपने समय की संस्कृति को, अपने समाज को तथा अपने देश की राजनीति को अपनी कविताओं के द्वारा अभिव्यक्ति दी है।

समय के परिवर्तन के साथ-साथ कविता के परिदृश्य में भी बदलाव आया है। पूँजीवाद के विकास के साथ उसकी संस्कृति भी विकसित होती जा रही है। जहाँ प्रौद्योगिकी का विकास अपने सांस्कृतिक परिवेश के प्रति निरपेक्ष और निस्संग भाव पैदा करता है वहाँ विकल्पों के लिए भी कोई गुँजाइश नहीं होता है। कवि कुमार अंबुज ने लिखा है- “जीवन के सामने / सबसे बड़ी मुश्किल यह है /कि उम्मीद का / कोई विकल्प नहीं /मृत्यु भी नहीं।”³ भूमण्डलीकरण और वैश्विक पूँजी के इस उत्तराधुनिक दौर में कविता अपने परिवेश की प्रत्येक घटना को बड़ी सजगता के साथ देख रही है। समकालीन समाज में दिनोंदिन बढ़ती क्रूरता, हिंसा, उद्वेगता और आतंक को लेकर इस समय बहुत सारी कविताएँ लिखी जा रही हैं। इसमें अपने समय की बेचैनी और छटपटाहट की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

अपसंस्कृति हमारे समूचे परिदृश्य पर छा गई है। यहाँ हत्यारे निर्द्वन्द्व घूम रहे हैं। वे पूरा माहौल बदलना चाहते हैं। मीडिया उन्हें फिल्म में ढाल रहा है। इसलिए हमारे विचार या हमारी भाषा और हमारे सारे समारोह भी उसीके होंगे। कवि लीलाधर जगूड़ी ने 'हत्यारा' शीर्षक कविता में इस प्रकार लिखा है - "हत्यारे के पास करने को हैं कई वारदातें / कई दुर्घटनाएँ / देने को हैं कई जलसे कई समारोह / कई व्यवस्था-विरोध और कई शोक-सभाएँ.../हत्या हो समारोह हो और विचार हो सिर्फ उसके।"⁴ हमारे समय के वरिष्ठ कवि भगवत रावत ने सख्त स्वर में चेतावनी दी है कि "कहने की ज़रूरत नहीं कि इन दिनों/अपराधी और हत्यारे खुले आम घूम रहे हैं / और हम देख रहे हैं / वे हमारे घरों में घुसे हुए हैं और हम उन्हें चाय पिला रहे हैं / वे सम्मानित किए जा रहे हैं और हम तालियाँ बजा रहे हैं / अब कहीं कोई रहस्य कोई रोमांच नहीं बचा / मनुष्यता को बचाने का कहीं कोई जोखिम नहीं बचा / धीरे - धीरे हम उनके साथ होते जा रहे हैं/धीरे-धीरे हम उनकी आँख, नाक, कान, पैर और हाथ / होते जा रहे हैं।"⁵

मीडिया और विज्ञापन भूमंडलीकरण के बाज़ारवाद के नए औज़ार हैं। साम्राज्यवादी मीडिया लुभानेवाले विज्ञापनों के जरिए सामाजिक सरोकारों को नष्टभ्रष्ट करके उपभोग - दर्शन तथा 'इस्तेमाल करो और छोड़ दो', जैसे सिद्धान्त के अंधाधुंध प्रचार-प्रसार कर रहा है। आज की हिन्दी कविता बाज़ारवाद और मीडिया के मकड़जाल की गिरफ्त में तो है। लेकिन इस दौर के कवि भूमंडलीकरण के शोषण-तंत्र को समझने के कारण उसका विरोध कर रहे हैं। देवी प्रसाद मिश्र की कविताएँ भूमंडलीकरण के ज़माने के भारतीय मनुष्य की उत्पीडा और बेबसी को व्यक्त

करती हैं। उनकी 'बाज़ार' शीर्षक कविता में वे दुनिया की सारी चीज़ों को मनुष्य से कीमती मानते हैं- "मनुष्य से कीमती था घोड़ा/मनुष्य से कीमती था हाथी।/ सेनाएँ मनुष्य से ज़्यादा भव्य मानी गयीं/और इमारतें मनुष्य से कहीं ऊँची। / यहाँ तक कि मृतकों के स्मारक/जीवितों से ज़्यादा गरिमामय माने गए।"⁶ आर्थिक उदारीकरण और उपभोक्तावाद के इस दौर में सभी चीज़ें बेची या खरीदी जा रही हैं। बाज़ार अब सर्वग्रासी है, इसलिए वहाँ चीज़ों का कोई विकल्प नहीं है। बाज़ार की एक विडंबना यह है कि वहाँ चीज़ें अपने वास्तविक रूप में दिखाई नहीं पड़तीं। मंगलेश डबराल ने 'बाज़ार' शीर्षक कविता में लिखा है- "जो लोग सिर्फ सहमी-सी आँखों से देखते रहते हैं।/ वे भी जानते हैं कि यहाँ रखी चीज़ें का कोई विकल्प नहीं है।/ फ़र्क सिर्फ यह है कि जो कुछ आम तौर पर/जिस तरह दिखता है वह उस तरह नहीं होता।"⁷

मुक्त बाज़ार की असीमित समृद्धि एवं खुशहाली का चित्रण ज्ञानेन्द्रपति ने अपनी 'आज़ादी उर्फ गुलामी' कविता में किया है। कवि के अनुसार यांत्रिक सभ्यता के शीर्ष पर आदमी ने अपने दिमाग को भी कंप्यूटर में बदल दिया है। कवि ने चेतावनी दी है कि विश्वबाज़ार के इन दिनों में आदमी ने अपने मुलायम दिमाग को भी बाज़ार के हाथों में सौंप दिया है- "आज़ादी के गोल्डन जुबली साल में / आज़ादी का मतलब है / बाज़ार से अपनी पसन्द की चीज़ें चुनने की आज़ादी / और आपकी पसन्द / वे तय करते हैं / जिनके पास उपकरणों का कायाबल / विज्ञापनों का मायाबल/ आपकी आज़ादी पसन्द हैं उन्हें /चीज़ों का गुलाम बनने की आज़ादी .. / विश्व बाज़ार के इन दिनों में धीरे-धीरे ही बाज़ार आपका विश्व बनता है।"⁸ उमेश कुमार सिंह ने अपनी 'अगिया बैताल' शीर्षक लंबी

कविता में भूमंडलीकरण के समय की अपनी बस्ती का यथातथ्य वर्णन किया है। कवि बड़े अफसोस के साथ लिखते हैं कि उसके गांव में धीरे से यूरोप का एक गांव घुस आया है, उसके कस्बे में, शहर में कौन जाने कहाँ का कचरा आ समाया है। कवि की रसोई में न जाने कहाँ का आटा, कहाँ की भाजी है। वह माचिस जिससे कवि ने अभी-अभी अपना दिया जलाया है, पता नहीं किस देश से वह आई है। इस तरह कहने के लिए कवि के पास बहुत कुछ हैं, जैसे संसद है, संविधान है, सरकारें हैं, अदालतें हैं।”⁹ कवि महसूस करते हैं कि ग्लोबलाइज़ेशन के इस दौर में उसकी बस्ती कितनी विरोधाभासी प्रवृत्ति का शिकार हुआ है। वैश्वीकरण के शोषण- तन्त्र का दुष्प्रभाव सबसे अधिक किसानों, दलितों और आदिवासियों पर ही पड रहा है। इसलिए इस दौर की कविताओं में किसानों दलितों और आदिवासियों में उठ रहे प्रतिरोध के स्वर का चित्रण भी हुआ है।

आजकल भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद ने मनुष्य की सामाजिकता और मानवीय संवेदना पर अधिक क्षरण किया है। कविता मनुष्य की सामाजिकता को नष्ट करनेवाली हर ताकत के खिलाफ़ लड़ती है। समकालीन कवि मनुष्यता और सामाजिकता को बचाने के पक्ष में खड़े रहे हैं। सामाजिकता अपने गंभीर अर्थ में एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य को जानना है और उसकी हताशा को पहचानना है, जैसे विनोदकुमार शुक्ल ने लिखा है - “हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था / व्यक्ति को मैं नहीं जानता था/हताशा को जानता था / इसलिए मैं उस व्यक्ति के पास गया/मैंने हाथ बढ़ाया / मेरा हाथ पकड़कर वह खड़ा हुआ/ मुझे वह नहीं जानता था /मेरे हाथ बढ़ाने को जानता था/ हम दोनों साथ चले /दोनों एक दूसरे को नहीं जानते थे /

साथ चलने को जानते थे।”¹⁰ इस तरह कविता हर संवेदनशील मानव को अपने समाज एवं अपने समय से जुड़े रहने का पाठ पढ़ाती है। दूसरों से मिल-जुलकर रहना और दूसरों की मुश्किलों का ज्ञान होना सामाजिकता की दृष्टि से बहुत ज़रूरी है। आज कवियों ने अनुभव किया है कि हमारे सांस्कृतिक स्थापत्य पर भयानक हिंसा एवं बर्बरता की छाया पड़ी है। राजेन्द्र राजन ने अपनी ‘पश्चाताप’ शीर्षक कविता में लिखा है - “महान होने के लिए, /जितनी ज़्यादा सीढ़ियाँ मैं ने चढ़ीं, उतनी ही ज़्यादा क्रूरताएँ मैंने कीं।/ ज्ञानी होने के लिए, जितनी ज़्यादा पोथियाँ मैंने पढ़ीं, / उतनी ही ज़्यादा मूर्खताएँ मैंने कीं। बहादुर होने के लिए, जितनी ज़्यादा लड़ाइयाँ मैंने लड़ीं,/उतनी ही ज़्यादा कायरताएँ मैंने कीं।”¹¹

कुमार अंबुज की कई कविताएँ पूँजीवाद की नई संस्कृति, मुक्त बाज़ार व्यवस्था, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रभुत्व, विश्व बैंक का दबाव, उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद, धर्म का बाज़ारीकरण, नव उपनिवेशवाद, शासन की भ्रष्ट व्यवस्था, पुलिस की तानाशाही, ईश्वरीय संगठन का गुप्त एजेंडा आदि विषयों को लेकर लिखी गई हैं। उनके ‘क्रूरता’ संकलन की कविताएँ हमारे समय में एक भारतीय नागरिक होने के संघर्ष और व्यथा को वाणी देती हैं। ‘क्रूरता’ जैसे कविता विरोधी शब्द को हिन्दी कविता साहित्य में कवि ने व्यापक सामाजिक एवं राजनीतिक अर्थों में ऐतिहासिक व सांस्कृतिक समझ के साथ व्याख्यायित करने की कोशिश की है। कुमार अंबुज की कविता आज के ग्लोबल साम्राज्यवादी अर्थ-तंत्र के प्रभाव में जो मनुष्य विरोधी व्यवस्था विकसित हुई है, उसीके खिलाफ़ प्रतिरोध का स्वर उठाती है। कवि की राय है कि आज संवेदनशील मानव का सब कहीं पराभव हुआ है। नागरिक

संवेदना भी लुप्त हो रही है। क्षमाभाव, प्रेम, करुणा, आत्मीयता, श्रृंगार आदि भावों से हमारी जो संस्कृति बनती थी, अब उनके स्थान पर क्रोध, हथियार, प्रतियोगिता, क्रूरता, संवादहीनता और संबन्धहीनता से हमारी संस्कृति बनती है। जब क्रूरता हमारी संस्कृति की तरह आएगी तब उसका कोई विरोध न होगा। तब वह भावी इतिहास की लज्जा की तरह आएगी - “धीरे-धीरे क्षमाभाव समाप्त हो जाएगा / प्रेम की आकांक्षा तो होगी मगर ज़रूरत न रह जाएगी/ झर जाएगी पाने की बेचैनी और खो देने की पीड़ा/क्रोध अकेला न होगा वह संगठित हो जाएगा/एक अनंत प्रतियोगिता होगी जिसमें लोग/पराजित न होने के लिए नहीं / अपनी श्रेष्ठता के लिए युद्धरत होंगे/ तब आएगी क्रूरता/ पहले हृदय में आएगी और चेहरे पर न दीखेगी।”¹² विश्व बाज़ार की नई वैश्विक संस्कृति देश की सारी पुरानी सभ्यताओं को रौंदकर आ रही है। लेकिन वह पहले के समान गोपनीय ढंग से नहीं आती, बल्कि अपनी तमाम ताकतों के साथ आ रही है, जैसे - कुमार अंबुज ने ‘नयी सभ्यता की मुसीबत’ कविता में लिखा है - “नयी सभ्यता ज़्यादा गोपनीयता नहीं बरत रही है / वह आसानी से दिखा देती है अपनी जंघाएँ और जबड़े/ वह रौंदकर आयी है कई सभ्यताओं को / लेकिन उसका मुकाबला बहुत पुरानी चीज़ों से हैं/ जिन पर लोग अभी तक विश्वास करते चले आये हैं/ उसकी थकान उसकी आक्रामकता समझी जा सकती है।”¹³ इस नई संस्कृति से एक नई सामुदायिकता का जन्म हुआ है। लेकिन वह मानव संबन्धों की सामुदायिकता नहीं, सिर्फ चीज़ों की सामुदायिकता है। जब चीज़ें एक भयानक परिदृश्य के रूप में दिखाई पड़ती हैं, तब हर मकान दुकान में बदलने की होड़ में है, और जहाँ दो जन इकट्ठे हुए हैं, वहीं हो जाता है एक बाज़ार। बाज़ार

में हर जगह व्यापार चल रहा है। बाज़ार की इस नई चाल के संबन्ध में कवि ने लिखा है - “कोई आपको प्रेम करेगा / कोई सुनाएगा बाँसुरी/कोई आपको एक घर का रास्ता बताएगा / कोई आपके दुखते कंधे पर रख देगा हाथ/ कोई बताएगा मुक्ति का मार्ग / कोई करेगा आपको युद्ध के लिए तैयार/और फिर कह देगा एक दिन कि यही तो है मेरा व्यापार/ दूकानदारी का यही चलन है/ यही रीति।”¹⁴ इस तरह कुमार अंबुज ने अपनी कविताओं के द्वारा ‘सुन्दर’ और ‘असुन्दर’ दोनों की व्याख्या की है। कवि के अनुसार जो मनुष्य के पक्ष में है, वह सुन्दर है और जो मनुष्य के पक्ष में नहीं है, वह असुन्दर है।

आज के कवियों की कविताओं में प्रतिरोध का स्वर कहीं आक्रोश में परिवर्तित नहीं होता, बल्कि वे अपना प्रतिरोध विद्रोह में परिणत होते देखना चाहते हैं, क्योंकि आक्रोश मूल्यहीन है, लेकिन विद्रोह मूल्यबद्ध है। कहीं प्रतिरोध ऐसा भी होता है कि जिसका हमें विरोध करना है, हमें उसे आत्मसात करना पड़ता है क्योंकि हम उसके सामने इतना निस्सहाय हो जाते हैं। लेकिन वह भी प्रतिरोध का एक तरीका है। जिन स्थितियों से हमें मुक्ति नहीं मिलती है, उन्हें चुपचाप स्वीकार करना भी प्रतिरोध का एक अलग रवैया होता है। हमें यह भी सोचना पड़ता है कि आखिर इस प्रतिरोध का फ़ायदा क्या है? हमें इस सवाल का उत्तर कवि मुकेश मानस की ‘भ्रम मत पालो’ शीर्षक कविता के स्ख में मिलता है- “भ्रम मत पालो / कि वेद -पुराण पढ़कर / भेड़िए सभ्य हो जाते हैं। भ्रम मत पालो / कि सभ्य भेड़िए के / नाखून नहीं होते। भ्रम मत पालो / कि विकास के क्रम में / भेड़िए खत्म हो जाएँगे। भ्रम मत पालो / कि भेड़िए तुम्हारी कविता पढ़कर / तुम्हारी व्यथा सुनकर पिघल जाएँगे। सच यही है कि

भेड़िए हर जगह होते हैं / और सभी भेड़िए हिंस्र होते हैं।”¹⁵ भाषा और संस्कृति का अभिन्न सम्बन्ध होता है। भाषा न केवल संस्कृति की वाहिका होती है अपितु उसकी कुंजी भी है। भाषा के बिना यदि संस्कृति पंगु है तो संस्कृति के अभाव में भाषा अंधी है। प्रेम, वात्सल्य, करुणा, ममता, सहानुभूति, दया, सेवा, सहयोग, त्याग, उपकार, सद्भाव जैसे मानवीय गुणों से हमारी संस्कृति बनती थी, और यह कहावत भी यहाँ महत्वपूर्ण है भाषा गई तो संस्कृति गई, इसलिए अंग्रेज़ी का यह उद्धरण बहुत महत्वपूर्ण है - “As long as we have the language / We have the culture / As long as we have the culture / We can hold on to the land.” अर्थात् जब तक हमारे पास भाषा है/ तब तक हमारे पास संस्कृति है, जब तक हमारे पास संस्कृति है,/तब तक हम अपनी भूमि पर बचे रहेंगे।

हम एक भूमंडलीकृत समाज में ज़िन्दा रहते हैं, इसलिए हमें इस हकीकत को स्वीकार करना है कि हम भी बदल रहे हैं, आदमी बदल रहा है। मुझे इस समय एक शायरी की याद आ रही है, जिसके साथ मैं अपनी बातों को समाप्त करूँगा- “आँखें तालाब नहीं, फिर भी भर जाती हैं,/ दुश्मनी बीज नहीं, फिर भी बोयी जाती है/ होंठ कपड़े नहीं, फिर भी सिल जाते हैं, किस्मत सखी नहीं, फिर भी रूठ जाती है/बुद्धि लोहा नहीं, फिर भी जंग लग जाता है/आत्मसम्मान शरीर नहीं, फिर भी घायल हो जाता है, और इंसान मौसम नहीं, फिर भी बदल जाता है।”

संदर्भ

1. पृ.सं.25, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, गर्म हवाएँ, प्र: वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2000।

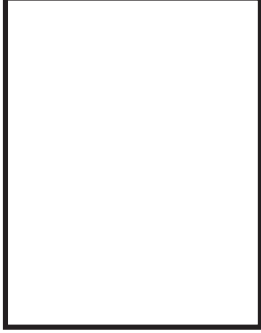
2. भूमिका, क्रूरता, कुमार अंबुज, प्र : राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; 2007।
3. पृ.सं. 71, वही
4. पृ.सं. 8, भय भी शक्ति देता है, लीलाधर जगूड़ी, प्र : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; 1991।
5. पृ.सं. 37, ऐसी कैसी नींद , भगवत रावत, प्र: वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2004।
6. पृ.सं. 47, प्रार्थना के शिल्प में नहीं, देवीप्रसाद मिश्र, प्र : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद; 1986।
7. पृ.सं. 58, आवाज़ भी एक जगह है, मंगलेश डबराल, प्र : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2000।
8. पृ.सं. 123-124, संशयात्मा, ज्ञानेन्द्रपति, प्र: राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; 2004।
9. पृ.सं. 43, कल के लिए, उमेशकुमार सिंह।
10. पृ.सं. 13, अतिरिक्त नहीं, विनोदकुमार शुक्ल , प्र: वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2000।
11. पृ.सं. 103 , दस बरस (सं.असद जैदी), राजेन्द्र राजन, प्र : सफ़्दर हाशमी मेमोरियल ट्रस्ट, दिल्ली; 2000।
12. पृ.सं. 21, क्रूरता, कुमार अंबुज, प्र : राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; 2007।
13. पृ.सं. 55, अमीरी रेखा, कुमार अंबुज।
14. पृ.सं. 57, अतिक्रमण, कुमार अंबुज।
15. पृ.सं. 81, दस बरस (सं.असद जैदी), मुकेश मानस, प्र : सफ़्दर हाशमी मेमोरियल ट्रस्ट, दिल्ली; 2000।

♦ सह आचार्य, हिन्दी विभाग
के. ई. कॉलेज, मान्दानम् ,
कोट्टयम जिला, केरल 686561

मोबाइल : 09447868474, 08086532004

हिन्दी की समकालीन महिला आत्मकथाएँ

• डॉ.पी.के. प्रतिभा



हिंदी साहित्य में आधुनिक युग की शुरुआत के साथ-साथ जीवन के प्रति वैज्ञानिक, तार्किक और यथार्थवादी दृष्टिकोण अधिक व्यापक रूप से मुखर होने लगा। साथ ही साथ पूरी दुनिया में साहित्य की जो विधाएँ प्रचलन में थीं उनका बड़े पैमाने पर अनुसरण किया जाने लगा। इस तरह कई नई विधाओं को प्रस्फुटित होने का अवसर हर जगह मिला। हिंदी साहित्य की गद्य विधाओं में 'आत्मकथा' साहित्य की अपनी एक परंपरा है। अंग्रेज़ी भाषा में इसके लिए 'Autobiography' शब्द प्रयुक्त है। असल में आत्मकथा आत्मा की अभिव्यक्ति की सर्वश्रेष्ठ विधा है। इसमें लेखक अपने विशिष्ट अनुभवों को लिपिबद्ध करते हैं और उन अनुभवों के माध्यम से लेखक और पाठक का सीधा संवाद होता है। अपनी जीवन-यात्रा की अभिव्यक्ति में वे अपने समय, अपने परिवेश और अपने संपर्क में आये लोगों को चित्रित करते हैं। वे अपने जीवन की एक-एक घटना को अपनी आत्मकथा में माला के मोती की तरह पिरोते हैं। आत्मकथा लेखक अपने बारे में जितना जानते हैं उतना कोई दूसरा प्रयत्न करने पर भी नहीं जान सकता। आत्मकथा लिखना एक तरह से अपने आपको पुनः जीना है। ऐसा करते समय वे अपने जीवन के हर सुख-दुख से फिर एक बार मुलाकात करते हैं।

'आत्मकथा' एक ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें रचनाकार अपनी गोपनीयता के बदौलत समाज की संकीर्ण गाँठों को खोलना चाहता है। ये आत्मकथ्य जब महिलाओं से लिखी जाते हैं तब पितृसत्तात्मक व्यवस्था से उनकी मुक्ति तथा लिंग - विभेद पर आमूलचूल परिवर्तन से संबन्धित समस्याएँ अनिवार्य रूप से उठायी जाती हैं। हिंदी भाषा के संबन्ध में भी यह सही है। हिंदी लेखिकाएँ अपनी भावनाओं को दमन करती, कभी-कभी उनके अस्तित्व तक को नकारने की कोशिश करनेवाले पदानुक्रम पर प्रश्नचिह्न



लेखन के ज़रिए ये सबलीकरण भी तो वे साहस के साथ अपने तक कि अपने विवाहेतर संबन्धों तक आत्मीयताओं की कहानियाँ सामने रखती हैं। अधिकांश महिला मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि है।

आत्मकथा का प्रबलतम पक्ष आत्मतत्व होता है। इस विधा में जो सबसे पहली शर्त है 'सत्य, सत्य के सिवा कुछ भी नहीं'। सच कहने का माद्दा जितना ज़्यादा होता है, आत्मकथा उतनी ही श्रेष्ठ होती है।¹ आत्मकथा लिखना साहसिक एवं चुनौती भरी जोखिम है। वह तलवार की धार पर चलने के समान है। आत्मकथाकार को अपने ही व्यक्तित्व को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने-परखने के असाधारण गुण से संपृक्त

होना पड़ता है। उसे तटस्थ होकर अपने अहं का विसर्जन करके यथार्थ चित्रण करना पड़ता है।

हिंदी में आत्मकथाएँ दो रूपों में देखी जाती हैं, हिंदी की अपनी आत्मकथाएँ और अन्य भारतीय भाषाओं से अनूदित होकर आयी हुई आत्मकथाएँ। अनूदित आत्मकथाओं में अमृता प्रीतम की 'रसीदी टिकट', तहमीना दुर्गानी की 'मेरे आका', तसलीमा नसरीन की आत्मकथा के सात खंड, बेबी हालदार की 'आलो आन्धारी', सुशीला राय की 'एक अनपढ़ कहानी', कमलादास की 'मेरी कहानी', नलिनी जमीला की 'एक सेक्स वर्कर की आत्मकथा' आदि उल्लेखनीय हैं।

हिंदी आत्मकथा साहित्य के इतिहास में सन् 1960 के बाद महिला आत्मकथाओं का आगमन दिखाई देता है। इस सन्दर्भ में प्रतिभा अग्रवाल ने 'दस्तक ज़िन्दगी की' तथा 'मोड़ ज़िन्दगी का', चंद्रकिरण सोनरिक्सा ने 'पिंजरे की मैना', कौसल्या बैसंत्री ने 'दोहरा अभिशाप', रमणिका गुप्ता ने 'हादसे', मन्नु भंडारी ने 'एक कहानी यह भी', मैत्रेयी पुष्पा ने 'कस्तूरी कुंडल बसे' तथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया', कृष्णा अग्निहोत्री ने 'लगता नहीं है दिल मेरा' तथा 'और और औरत', सुशीला टाकभौरे ने 'शिकंजे का दर्द', प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या' आदि आत्मकथाएँ लिखकर हिंदी महिला आत्मकथा साहित्य को प्रतिष्ठित किया है। इन्होंने पुरुष की तरफ़दारी करती सामाजिक व्यवस्था को झकझोर कर दिया। अपने जीवन के अंतरंग प्रसंगों का बेबाक, निडर चित्रण इन लेखिकाओं ने किया, जिसने आधुनिक युग के जटिल होते स्त्री-पुरुष संबन्धों की ओर इशारा किया। तेज़ी से बदलते सामाजिक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में नारी-नियति पर गहराई से विचार करने को विवश कर दिया। इन आत्मकथाओं ने स्पष्ट

कर दिया कि स्त्री-विमर्श मज़ाक नहीं है, हमारे समय की ज़रूरत है। स्त्री-विमर्श मात्र नारी जीवन से जुटा नहीं है, वह आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विमर्श भी है, ये आत्मकथाएँ इसके सबल प्रमाण हैं।

हिंदी आत्मकथा साहित्य में श्रीमती प्रतिभा अग्रवाल का नाम उल्लेखनीय है। उनकी आत्मकथा दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड 'दस्तक ज़िन्दगी की' और दूसरा खंड 'मोड़ ज़िन्दगी का' प्रकाशित हुए हैं। इसके द्वारा यह प्रमाणित होता है कि एक कर्मठ व्यक्ति अपने लिए रास्ता कैसे बना लिया जाता है। 'दस्तक ज़िन्दगी की' में प्रतिभा अग्रवाल ने अपने जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव ही नहीं हिंदी तथा बंगला रंगमंच पर भी विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। प्रतिभाजी इसके द्वारा नारी समाज को खुद की प्रतिभा और क्षमता को पहचानकर आत्मविश्वास को बनाये रखने की प्रेरणा देती हैं।

'मोड़ ज़िन्दगी का' खंड में प्रतिभाजी ने जीवन में कितनी ही आपत्तियों का सामना करना पड़े, फिर भी बड़े साहस एवं आत्मविश्वास से आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है। अपने पति की मृत्यु के बाद भी प्रतिभाजी बड़े आत्मविश्वास के साथ हिंदी और बंगला नाटक एवं रंगमंच को विकसित करती रहीं। उन्होंने 'नाट्य शोध संस्थान' की स्थापना करके रंगमंच के विकास का पथ अग्रसर किया। नारियों को परंपरागत बेड़ियों को काटकर अभिनय के क्षेत्र में भी लायीं। इस प्रकार प्रस्तुत आत्मकथा के ज़रिए प्रतिभाजी ने नारी की क्षमता पर प्रकाश डाला है।

हिंदी की प्रारंभिक महिला आत्मकथाओं में श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरिक्सा की आत्मकथा 'पिंजरे

की मैना' है। उनके दिनों में स्त्री-शिक्षा उतनी व्यापक नहीं थी। अपनी माँ की मृत्यु के कारण उनकी शिक्षा बीच में रुक गयी। मगर अपने कठिन परिश्रम से घर का सारा काम संभालते हुए उन्होंने पढ़ाई जारी रखी। उनकी शादी कांतिकन्द्र सौनरिक्सा के साथ संपन्न हुई। एक गैर ज़िम्मेदार, असंतुलित मनोभावों के पति के साथ जीवन-निर्वाह के लिए वे विवश हो जाती हैं। अपने पति पर कहीं भी वे इलज़ाम नहीं लगातीं, मात्र परिस्थितिजन्य, स्वभावजन्य कहकर टाल देती हैं। पति की हर बात को मानकर उनको खुश रखने की कोशिश करती पत्नी को निरंतर अपमान सहना पड़ता है। सिविल सर्विस का कर्मचारी पति हर पोस्टिंग के दौरान एक प्रेमिका पेश करता है। इस आदत के कारण वह नौकरी से निकाल दिया जाता है। पत्नी को शयनकक्ष से निकालकर प्रेमिका को हम बिस्तर बनानेवाले पति को चन्द्रकिरण क्षमा कर देती हैं। हीनता ग्रन्थि का शिकार पति, पत्नी के लेखन का सारा श्रेय अपने को देता है। इस आत्मकथा में शायद विद्रोह पाया नहीं जाएगा, घुटन ही मिलेगा।

दलित की यदि सच्ची, जीती-जागती तस्वीर देखनी है तो वह दलित साहित्य में लिखी गयी आत्मकथाओं में दिखाई देगी। मनुवादी समाज के शिकार दलित साहित्यकारों ने उपेक्षा, छुआछूत, पीड़ा, विवशता, अन्याय, भूख, लाचारी, अभाव व दरिद्रता को जिया और भोगा। उसीकी अभिव्यक्ति उन्होंने आत्मकथाओं में की। श्रीमती कौशल्या बैसंत्री का 'दोहरा अभिशाप' हिंदी में स्त्री विरचित प्रथम आत्मकथा है। इसका शीर्षक 'दोहरा अभिशाप' एक नारी और दलित होने की लेखिका की दोहरी स्थिति की ओर इशारा करता है। इसमें वे दलित चेतना के विचारात्मक

संयम को छोड़कर सीधे सामाजिक वास्तविकता को संबोधित करती हैं। दलितों और गैर-दलितों के बीच की ही नहीं, दलितों के बीच की अपनी और दलित पुरुष और दलित नारी के बीच की समस्याओं का भी चित्रण करती हैं। अपनी आत्मकथा इन शब्दों में वे समाप्त करती हैं कि दलित नारियों को अपनी लड़ाई खुद लड़नी है और अपनी अवलंब अवस्था स्वयं बनानी है।

श्रीमती सुशीला टाकभौरे का 'शिकंजे का दर्द' महिला आत्मकथाकारों का आगाज है। यह दलित नारी के शोषण के विरुद्ध के संघर्ष की गाथा है। जंगल में शिकारी द्वारा कसे गये शिकंजे में जब कोई जानवर फँस जाता है तब मुक्ति के लिए उसके भीतर से दर्दनाक चीख बाहर निकलती है। वह मज़बूर, लाचार और विवश होकर दर्द, पीड़ा, दुख को लगातार सहता पड़ा रहता है। वह जंगल के किसी एक कोने में तड़प-तड़पकर मरने के लिए विवश हो जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक आत्मपीड़न, पीड़ा, संत्रास, घुटन, अन्याय, अत्याचार, दुख-दर्द, अपेक्षा को सहते-सहते पुरुषों के विरुद्ध आज की दलित नारी में आक्रोश और विद्रोह प्रकट हो रहा है। वह समझ चुकी है कि इस शिकंजे से मुक्ति पाना है तो शिक्षा ग्रहण करनी ही होगी।

सुशीला टाकभौरे की जाति पिछड़ों में पिछड़ी समझी जाती थी। स्त्रियों को पढ़ाने-लिखाने का रीति-रिवाज़ उस समय नहीं था। इसलिए उनका परिवार शोषण चक्र का शिकार हुआ था। सुशीलाजी शिकंजे के इस दर्द को व्यक्त करते हुए कहती हैं "सच यह था कब आया यौवन, जान न पाया मन।.....वह उमंग कभी मिली ही नहीं जो यौवन का अहसास कराती।

उम्र के साथ कटु अनुभूतियों के दंश महसूस होते रहे। पीड़ा से छटपटाता मन मुक्ति का ध्येय लेकर आगे बढ़ता रहा। तब मुक्ति का मार्ग मैंने शिक्षा-प्राप्ति को ही माना था।”² उस समय हिंदू धर्म ने दलित समाज को कभी इनसान न माना। इसलिए उनके साथ जानवर से भी गये-गुजरे-सा व्यवहार किया था। दलित नारी होने के कारण उन्हें दुहरी पीड़ा भोगनी पड़ी। उनका विवाह छत्तीस साल के टाकभौरे से हुआ था। अपने से उम्र में कई साल बड़े होने के बावजूद उन्होंने उनसे आधुनिक विचारों के होने के कारण विवाह किया था। लेकिन जल्दी ही उनका यह भ्रम टूट गया। वे सदियों से चली आ रही पुरुषाधीन मानसिकता, गुलामी, ताड़ना, मारना-पीटना, पैरों की जूती समझना, नौकर सा बर्ताव करने की शिकार हो गयी थीं। इस शोषण के विरोध में वे पति से संघर्ष करने लगी। उन्हें तब अधिक दुख हुआ, जब अपनी ही दलित जाति के लोग उनकी उपेक्षा करने लगे। अपने जीवन के द्वारा उन्होंने यह साबित किया कि स्वयं और समाज का यदि सही मायने में विकास करना है तो समाज में परिवर्तन की लहर लानी होगी। यह परिवर्तन तब ही आयेगा जब शिक्षा, निडरता तथा सफलता का तेजधारवाला हथियार हाथ में लहराता हुआ दिखाई देगा। असल में यह आत्मकथा नारी जीवन में बाल्यकाल से वृद्धावस्था तक पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था द्वारा कसे जानेवाले शिकंजे का दर्दनाक आख्यान है।

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा ‘हादसे’ राजनैतिक आत्मकथा कही जा सकती है और हिंदी में नारी विरचित राजनैतिक आत्मकथाओं के अभाव की पूर्ति करती है। ‘हादसे’ रमणिका गुप्ता के राजनैतिक संघर्ष की दास्तान है। एक स्त्री होने के नाते उन्हें राजनीति में

प्रवेश पाने के लिए जिन कटु अनुभवों का सामना करना पड़ा उनका मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। जहाँ समाज में अपमानित होने के भय से वैयक्तिक यौन अनुभवों के विषय में महिलाएँ चुप्पी साधती हैं वहाँ रमणिका गुप्ता किसी अपमान की चिन्ता किये बिना खुलकर अपने अनुभवों का चित्रण करती हैं। वे कहती हैं कि सत्ता में पैर रखने के लिए हर एक को कुछ देना पड़ता है। पुरुष पैसै देता है तो नारी अक्सर अपना शरीर देती है। उन्हींके शब्दों में राजनैतिक सत्ता पर पैर रखने की दौड़ में कई हाथों से उन्हें गुज़रना पड़ा था। असल में यह आत्मकथा उनके अजेय संघर्ष की कथा है। इसमें उन्होंने अपने अहं का निषेध करके उसे सार्वजनिक प्रदर्शन की वस्तु बनायी है तो उसके पीछे उनकी प्रतिश्रुति का बोध है।

हिंदी में प्रकाशित महिला आत्मकथाओं में श्रीमती मन्नू भंडारी की ‘एक कहानी यह भी’ विशेष उल्लेखनीय है। यह रचना लेखिका के जीवन के अनुभवों का इस ढंग से छानबीन करती है कि भारतीय नारी की अपनी नौकरी और पारिवारिक दायित्वों के बीच की डावंडोल स्थिति स्पष्ट हो जाती है। एक लेखिका बनने के यत्न में महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाली मन्नूजी के जीवन की प्रायः सभी मुख्य घटनाओं का वर्णन इसमें प्राप्त है। स्त्री सन्तानों के प्रति पिता और परिवारवालों के पक्षपातपूर्ण रवैये के प्रति लेखिका को चिढ़ होती थी। इस आत्मकथा में एक ओर नारी की इच्छा, आशा, आकांक्षा तथा महत्वाकांक्षा को उद्घाटित कर नारी में चेतना और जाग्रति लाने का कार्य किया गया है, तो दूसरी ओर स्त्री की परंपरावादी छवि को साकार करते हुए उस छवि को भंग होने से बचाया गया है। बाद में अपने पिताजी की इच्छा के विरुद्ध

उन्होंने बिरादरी के बाहर के राजेंद्र यादव से शादी की। विवाह के संबन्ध में स्वयं मन्नूजी ने लिखा है “सब लोग सोचते थे और मुझे भी लगता था कि एक रुचि.....एक ही पेशा, कितना सुगम रहेगा जीवन। मुझे अपने लिखने के लिए तो जैसे राजमार्ग मिल जाएगा। लेकिन एक ही पेशे के लोगों का साथ जहाँ कई सुविधाएँ जुटाता है वहाँ दिक्कतों का अंबार भी लगा देता है कम से कम सेरा अनुभव रहा।”³ लेकिन उनकी प्रतीक्षाओं पर पानी पड़ा। बीमारी के दिनों में भी पति उन्हें छोड़कर चले गये। उन्हें पता चलता है कि हर हालत में पुरुष आज भी शिकारी है, शिकार है स्त्री। इस प्रकार यह आत्मकथा बहुत कुछ मन्नू भंडारी के वैवाहिक जीवन के चारों ओर मंडराता रहता है। थोथी नैतिकता, निरर्थक धार्मिक आचारशीलता, झूठी मूल्यवादिता आदि के विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा यह आत्मकथा अवश्य प्रदान करती है।

श्रीमती मैत्रेयी पुष्पा ऐसी ही विद्रोही, साहसी एवं विरले व्यक्तित्व की स्वामिनी है। अपने जीवन के रेशे-रेशे को बेबाकी के साथ उन्होंने अपनी आत्मकथा के दोनों खंडों में उजागर कर दिया। ‘कस्तूरी कुंडल बसे’ और ‘गुड़िया भीतर गुड़िया’ मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा के प्रथम और द्वितीय भाग हैं। पहली आत्मकथा के केंद्र में माँ है तो दूसरे भाग में पति तथा लेखिका का रचनात्मक संघर्ष है। इनमें एक महिला रचनाकार के जीवन की विभिन्न समस्याएँ, सामाजिक और पारिवारिक उलझनें, गलतफहमियाँ आदि चित्रित हैं। यह उनकी और उनकी माताजी की कहानी है। इसमें माँ और बेटी की दो पीढ़ियों के संस्कारों के संघर्ष का वर्णन है। विधवा माँ संघर्ष एवं कष्टप्रद अवस्था में भी शिक्षित होकर परंपरावादी समाज के विरुद्ध

जाकर आत्मनिर्भर जीवन जीती है। माँ नौकरीवश बेटी को बार-बार किसी परिचित या नाते-रिश्तेदार के यहाँ अकेला छोड़ देती है, जिससे मैत्रेयी को बार-बार शारीरिक असुरक्षा का दंश झेलना पड़ता है। इसलिए वे माँ के सपनों को रौंदती हुई वैवाहिक जीवन चुनकर खुद उनसे अलग हुई थीं। मैत्रेयी सुरक्षित होने के लिए विवाह करती हैं। पति डॉ.शर्मा की नियुक्ति दिल्ली के एम्स में होती है। ग्रामीण संस्कारोंवाली मैत्रेयी दिल्ली पहुँचती हैं। पति अपनी पत्नी को आधुनिक भी बनाना चाहता है और नियंत्रण में रखना भी चाहता है। असल में पति द्वारा मैत्रेयी पर थोपी गई आधुनिकता बनावटी और सीमित है। इसलिए मैत्रेयी जल्दी ही विवाह संस्था से विरक्त होने लगती हैं। उनमें एक उन्मुक्तता है। वे गृहस्थी की झंझटों में पिसना नहीं चाहती हैं। बाह्य जगत में अपनी क्षमता का विकास करना चाहती हैं। इस पर माँ और पति बंधन लगाना चाहते हैं। लेकिन मैत्रेयी दृढ़धर्मिता के साथ कहती हैं “यदि कोई पति पत्नी की कोमल भावनाओं को कुचलकर खतम करता है तो पत्नी को पतिव्रता के नियमों का उल्लंघन हर हालत में करना होगा।”⁴

यह आत्मकथा मात्र मैत्रेयी पुष्पा का जीवनवृत्त न होकर एक ऐसी साहित्यिक दस्तावेज़ है जिससे एक गँवाई लड़की को एक महत्वपूर्ण लेखिका के रूप में व्यक्तित्वान्तरण के अन्तर्गत समझा जा सकता है। वह पत्नी-धर्म के साथ अपनी अस्मिता के प्रति भी सजग हो उठती है। समस्त दबावों - तनावों को झेलते हुए मैत्रेयी ने अपनी रचना ‘गुड़िया भीतर गुड़िया’ का सृजन किया। क्योंकि रेशमी गुड़िया बने रहने पर उन्हें पश्चात्ताप होता है। इसलिए अपनी समूची सामर्थ्य लगाकर सुन्दर कम और सत्य ज़्यादा लिखा है।

‘गुड़िया भीतर गुड़िया’ में पुरुष-वर्चस्व, पुरुष के स्त्री विरोधी विचार, घर-परिवार और दांपत्य के अन्यायों का खुलासा किया गया है। वे पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी की दयनीय स्थिति में परिवर्तन चाहती हैं। हमारा समाज स्त्री को हमेशा सजी सँवारी गुड़िया मानता आया है। लेकिन उसके भीतर जो और एक गुड़िया का अस्तित्व होता है, यह आत्मकथा उसका प्रकाशन है। उनकी आत्मस्वीकृतियों की ईमानदारी से कृति का मूल्य बढ़ गया है। यह आत्मकथा पुरुषवादी व्यवस्था, संस्कार और आदतों को चुनौती दे रही है। मैत्रेयी पुष्पा ने आत्मकथा लिखकर पुरुष सत्तात्मक तथा वर्चस्ववादी व्यवस्था पर कठोर प्रहार कर अन्यायग्रस्त स्त्रियों की मुक्ति की दावेदारी रखी। वे अपने लेखन के ज़रिए स्त्रियों को संघर्ष करने की प्रेरणा देती रहीं। असल में दृढ़ संकल्प और ऊर्जा-शक्ति से ही वे महान लेखिका बन सकीं।

‘अन्या से अनन्या’ श्रीमती प्रभा खेतान के जीवन की खुली किताब है, जिसमें लेखिका ने अपने संघर्षपूर्ण जीवन का बेबाक, साहसपूर्ण व विस्तृत लेखा-जोखा प्रस्तुत किया। मारवाड़ी परिवार में जन्म लेनेवाली प्रभा खेतान अपने समग्र जीवन का दौरा निष्पक्षता के साथ पाठकों के सम्मुख रखती हैं। साधारण जीवन से आरंभ करके उन्होंने असाधारण स्त्री - क्षमता का विकास किया था और इसे उन्होंने ‘अन्या से अनन्या’ नामक आत्मकथा में लिपिबद्ध किया है। उनकी आत्मकथा का मूलस्वर स्त्रीवादी है। आत्मकथा में रेखांकित किया गया है कि जिस परिवार नामक संस्थान को हम महान मानते हैं, पति-पत्नी के संबन्ध को उच्च कोटी का मानते हैं, वह स्वयं किस कदर खोखला हो चुका है। आत्मकथा में समग्र आत्मकथा

को प्रभाजी की जीवनचर्या के आधार पर तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है, जिसमें बचपन की दर्दनाक ज़िंदगी, युवावस्था में डॉ. सरार्फ के साथ बिताया हुआ लंबा सफर और विदेश यात्रा में आये हुए भीषण अनुभव आदि को देखा जा सकता है। प्रभा देखने में काली होने के कारण परिवार के सभी लोगों से प्रताड़ना मिली है। माँ ने कभी उनको प्यार नहीं दिया। उनके ही शब्दों में “कैसा अनाथ बचपन था। अम्मा ने कभी मुझे गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घंटों उनके कमरे के दरवाज़े पर खड़ी रहती। शायद अम्मा मुझे अन्दर बुला लें, शायद अपनी रजाई में सुला लें, मगर नहीं, एक शाश्वत दूरी बनी रही हम दोनों के बीच।”⁵

पारिवारिक पृष्ठभूमि भले ही सनातनी और पुराणपंथी हो लेकिन प्रभा खेतान आधुनिक विचारों का समर्थन करनेवाली आत्मनिर्भर, संघर्षशील, स्वाभिमानी, प्रवाह के विरोध में चलनेवाली लड़की थी। परिवारवालों द्वारा शिक्षा का विरोध करने के उपरांत उन्होंने कोलकत्ता के चर्चित प्रेसिडेंसी कॉलेज में प्रवेश लेकर अध्यापकों की प्रेरणा पाकर अपने जीवन का गठन किया। बाद में एक बार आँखों का इलाज कराने गई वह अंजान, नादान, सुशील लड़की डॉ. सरार्फ को अपना सर्वस्व देकर आई, जो हर स्त्री की अपनी अमूल्य निधि होती है। चरित्रहीन डॉ. सरार्फ ने शुरू में प्रभा के प्रेम को स्वीकार किया उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की। प्रभा ने सरार्फ से देह से ऊपर उठकर प्रेम किया। लेकिन डॉक्टर की दृष्टि उसके शरीर पर थी और कुछ ही दिनों में डॉ. सरार्फ को प्रभा की ज़रूरत नहीं रही। उस समय उसने दोनों के बीच के प्रेम को भूल जाने की सलाह दी। लेकिन प्रभा का कहना यह था कि वह नौकरी करेगी, खुद कमाए हुए

पैसे से खर्च करेगी, लेकिन डॉ. सरार्फ के साथ रहेगी। बाद में जब वे गर्भवती होती हैं तो सरार्फ तीव्र निरोध करके बच्चे को गिराने को कहते हैं। इस कारण से भविष्य में वे फिर कभी माँ नहीं बन सकीं। आत्मकथा के अंत में डॉ. सरार्फ हार्ट की बीमारी और कैंसर के शिकार होते हैं तो उसे प्रभा के सहारे की आवश्यकता होती है। तो प्रभा डॉक्टर को तथा उनके परिवार को पूरा सहयोग देती हैं। इससे उनके चरित्र की ऊँचाई ज़ाहिर होती है। इस तरह से प्रभा खेतान के जीवन का दूसरा पड़ाव भी असफल हो गया। न वह विवाह कर सकी, न किसी बच्चे की माँ बन सकी। आत्मकथा का तीसरा हिस्सा लेखिका की विदेश यात्रा से शुरू होता है। उस समय स्वावलंबी, आत्मनिर्भर बनी प्रभा व्यवसाय करने के लिए अमेरिका, इतालवी आदि देशों की यात्रा करती हैं। आत्मकथा के इस हिस्से में पैसे के अभाव के कारण विदेश यात्रा में आई हुई दिक्कतें, भारत के प्रति विदेशी मीडिया का रुख, विदेशी संस्कृति, यात्रा करते समय उनके विभिन्न अनुभव आदि महत्वपूर्ण हैं। अमेरिका से लौटने के बाद प्रभा ने फिगरेट क्लब खोला। पर उनका यह उद्यम असफल हुआ।

जीवन के इस दर्द से दूर होने के लिए महत्वाकांक्षी प्रभा ने चमड़े का व्यापार शुरू किया, जिसका सभी ने विरोध किया। लेकिन संघर्ष करते-करते वह असफल स्त्री सफल नारी बन गयी। इस प्रकार जीवन के अंत तक संघर्ष करनेवाली प्रभा का परिचय प्रस्तुत आत्मकथा से हमें मिलता है। नारी जीवन से जुड़े अनेक मुद्दों पर गहन विमर्श की माँग करने की दृष्टि में प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' निश्चित तौर पर एक महत्वपूर्ण कृति है। अपनी आत्मकथा के ज़रिए सदियों से दमित, शोषित, पराधीन, भारतीय नारी की

स्वायत्तता, समता और स्वतंत्रता के अधिकार की बातें प्रभा खेतान ने सफलतापूर्वक उठायी हैं।

उपर्युक्त महिला आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं के द्वारा नारी में अस्मिता-बोध जाग्रत कर साहस के साथ आगे बढ़ने का आह्वान किया है। वर्तमान पुरुष केन्द्रित समाज - व्यवस्था बदलनी है, इसमें ये रचनाएँ एकमत हैं। इनकी आत्मकथा के केंद्र में नारी अस्मिता, समाज और परिवार में नारी की भूमिका, स्त्री - पुरुष संबन्ध, नारी देह, नारी-शोषण, नारी की बदली मानसिकता जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों को स्थान दिया गया है। आत्मकथा साहित्य को एक नया आयाम देने की दिशा में इन्होंने सफलता प्राप्त की है।

सन्दर्भ

1. हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथा, डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र
2. शिकंजे का दर्द प्रो. सुशीला टाकभौरे, पृ. 114, प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. एक कहानी यह भी, मन्नू भंडारी, पृ. 48, प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 15, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

◆ असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
एस.एन.जी.एस. कॉलेज पट्टांपि,
पालक्काट्टु जिला, केरल राज्य
मोबा : 9142160792

गिरमिटिया मज़दूरों की समस्याएँ - 'पथरीला सोना' के संदर्भ में



♦ डॉ. सिन्धु.एस.एल

'पथरीला सोना' मॉरिशस के मशहूर लेखक रामदेव धुरंधर का प्रमुख उपन्यास है। वहाँ के प्रवासी भारतीय मज़दूरों का स्वर बाहर की दुनिया को सुनाने का परिश्रम रामदेव धुरंधर ने अपने उपन्यासों के द्वारा किया है। उस देश के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भाषिक, आर्थिक भूमिकाओं के दृश्य उनके उपन्यासों में हैं। गिरमिटिया मज़दूरों द्वारा भोगे गए कटु अनुभवों का चित्रण उन्होंने किया है। मानव के अधिकारों से वंचित इन मज़दूरों को गोरों के अधीन होकर दास जीवन बिताना पड़ा। भारत से गुलामी के काले हस्तों से मुक्त होने की प्रतीक्षा में वहाँ पहुँचे भारतीय मज़दूरों को फिर गुलामी की जंजीरों में बन्द होना पड़ा। ठेकेदारों के कब्जे में पड़कर मालिकों के गिरमिटिया मज़दूर बनने के लिए ये विवश हो गये। गिरमिटिया बनने पर इनको कई शर्तों का पालन करना पड़ा। शर्तें इस प्रकार थीं,

1. पाँच वर्षों तक मॉरिशस में काम करना होगा।
 2. आने-जाने का खर्च मालिक देंगे।
 3. पुरुषों को पाँच रुपये मासिक वेतन तथा स्त्रियों को चार रुपये मासिक वेतन दिये जाएँगे।
 4. राशन इस प्रकार होगा-
- क. प्रति व्यक्ति को एक सेर चावल।

- ख. प्रति महिला को तीन पाव चावल।
- ग. एक पाव दाल।
- घ. आधी छटांक नमक।
- ङ. आधी छटांक तेल। आधी छटांक सरसों।
- च. वर्ष में एक बार एक धोती, एक कमीज़, दो कंबल, एक फितुई और दो टोपियाँ।

नौकरी की नियुक्ति के समय छठ मास का वेतन अग्रिम दिया जाएगा। शेष प्रतिमास मिलेगा। भारत से गये मज़दूरों को पाँच वर्ष तक शर्तबन्दी काम करना पड़ा। रविवार को तीन घंटे का अवकाश मिलता था। किन्तु एक दिन की अनुपस्थिति के लिए पाँच रुपये की छोटी रकम से ही दो दिनों की मज़दूरी काट ली जाती थी। लेकिन शर्तों का सही पालन नहीं होता था। मज़दूरों की अवस्था इतनी बुरी थी कि रात को दो बजे कुली को उसकी झोंपड़ी से खींचकर काम पर ले जाया करता था और आठ या दस बजे ही रात्रि को छुट्टी मिलती थी। मारपीट और लाठी-प्रहार नित्य परिपाटी थी। कड़ी धूप में नारियों को भी वहाँ खेतों में काम करना पड़ता था।

पथरीला सोना

इस उपन्यास में प्रवासी भारतीयों की वह गाथा है जो सन् 1834 से 1912 तक श्रमिकों की भूमिका निभाने भारत से मॉरिशस गये थे। उन्होंने उस अनजान

द्वीप की पथरीली, कीचड़ भरी अनुर्वर भूमि को इस योग्य बनाया कि वहाँ सोना उगलने लगा। आज मॉरिशस विश्व का एक समृद्ध द्वीप है जिसका निर्माण उन प्रवासी भारतीय श्रमिकों ने अपनी श्रम शक्ति और हज़ारों बाधाओं के बीच, पूरे साहस के साथ किया। 'पथरीला सोना' उपन्यास उस युग गाथा की दस्तावेज़ प्रस्तुत करता है।¹

'पथरीला सोना' के छः भाग हैं। इनमें भारत से लाये गये मज़दूरों के दर्द भरे अनुभव, स्वतंत्रता के लिए उनकी तड़प, उनका संघर्ष, जेलवास, उनका राजनीति में आगमन आदि चित्रित हैं। मारीच देश में पत्थर के नीचे सोना छिपा हुआ है, इस कथन को सच समझकर वहाँ पहुँचे भारतीय मज़दूरों को खेतों में सोना उगलवाने के लिए चट्टानों का सामना करना पड़ा, दिन रात खेतों में काम करना पड़ा, अपने अधिकारों से वंचित होकर जीना पड़ा। इनका रास्ता पत्थर और काँटों से भरा हुआ था, फिर भी वे हारने के लिए तैयार नहीं थे।

प्रवासियों के मन में हमेशा उनकी अस्मिता का सवाल है। सामाजिक और आर्थिक प्रगति होने पर भी राजनैतिक क्षेत्र में भी उनका अधिकार स्थापित होने से मात्र प्रवासियों की कई समस्याओं का अंत होगा। रामदेव धुंधर ने आप्रवासी मज़दूरों की ज़िन्दगी की विभिन्न समस्याओं को चित्रित करके मॉरिशस को स्वतंत्रता तक ले जानेवाले मज़दूर नेताओं के संघर्ष को दिखाया है। भारत से गिरमिटिया मज़दूर बनकर मारिशस पहुँचने से लेकर उस देश की स्वतंत्रता तक की गाथा आप्रवासी मज़दूरों के जीवन-संघर्ष व्यक्त करते हैं। उनके सामाजिक, राजनीतिक, मानसिक, तथा भाषिक समस्याएँ उन लोगों से भिन्न हैं जो अपनी जन्मभूमि में जीते हैं। भारत छोड़ने के लिए लोग इसलिए तैयार हुए कि उनकी ज़िन्दगी में प्रगति हो जाए। ठेकेदारों पर उन्होंने विश्वास किया। अपने भविष्य

के निर्माण का विचार उनके मन में था। लेकिन इस के लिए उन्हें कई कठिनायें झेलनी पड़ीं और समस्याओं का सामना करना पड़ा।

जहाज़ की पीड़ा: मारीच देश पहुँचने के लिए मज़दूरों को जहाज़ में यात्रा करनी थी। वहीं से उनकी समस्याओं की यात्रा शुरू होती है। इस उपन्यास में गिरमिटिया मज़दूरों को जहाज़ में भोगनेवाली पीड़ाओं का चित्रण है।

समुद्र पार करके जहाज़ पर मारीच देश की ओर सैर करने पर मज़दूरों के मन में बहुत इच्छाएँ और आकांक्षाएँ थीं। लेकिन उनकी यात्रा इस तरह थी, जहाज़ के कर्मचारी इस तरह बातें करते थे, मानो आतंक और अपमान से ही जहाज़ को आगे बढ़ाया जा सकता है। जहाज़ में कोई खराबी आये तो डाँटकर कहा जाता था कि 'इन सालों के कारण ऐसा हो रहा है'। कुछेक अधिकारियों के हाथ में बंदूक थी। लाठी तो लगभग सब के हाथ में थी। मार खाने जैसा कोई काम न किये जाने पर भी मारा जाता था। गाली से छलनी हो रहे हो तो ज़ुबान में ताला लगाये रखें, क्योंकि यही करके अगली गाली से अपने को बचा पाएँगे।²

मानवीयता का गला घोटकर मज़दूरों के साथ ऐसा व्यवहार हुआ कि उन लोगों ने अपना देश लौटना चाहा। मान-मर्यादा का पालन नहीं हुआ।

जहाज़ में एक औरत को पेट में दर्द था। लेकिन अधिकारियों ने कहा कि वह गाभिन है। एक अधिकारी ने कहा पेट दिखा दो, तभी मानूँगा। "उस कर्मचारी ने जाला ऐसा बनाया कि औरत पेट न दिखाती तो उसे समुद्र में फेंका दिया जाएगा। औरत ने लहंगा उठाकर अपना पेट दिखाया। सारी औरतें चीख पड़ीं।"³

अपनी जान बचाने के लिए क्या-क्या करना पड़ा? महिलाओं को जीवन की सबसे बुरी हालत से गुज़रना

पड़ा। इस तरह मॉरिशस पहुँचने के पहले ही इनको समस्यायें झेलनी पड़ीं।

मज़दूरों का बँटवारा: जहाज़ में इतनी लंबी नरक यात्रा के बाद भी उनको तसल्ली नहीं मिली। कहाँ जाना है, किसके साथ जाना है, कोई भी कार्य निश्चित नहीं है। शक्कर प्रतिष्ठानों के फ्रांसीसी गोरे पहले से अपनी लिस्ट छोड़ चुके थे कि उन्हें कितने मज़दूर चाहिए। पर मज़दूरों के बँटवारे का एक बज़ारूपन भी साथ साथ निभ रहा था। इसमें अरकाटी थे और गोरों के वे सरदार थे जो इन्हें अपने साथ ले जाने के लिए आए हुए थे। इधर से या उधर से मज़दूरों की संख्या ठीक से बिठाने की प्रक्रिया में एक को यदि उस टोली में खड़ा किया जाता था तो दूसरी टोली के किसी एक से कहा जाता था उस कतार में जाकर खड़े हो जाओ। आदमी बेचे और खरीदे जाने के उस दृश्य का इस देश को गवाह बनना था।⁴

मज़दूरों को बाज़ार की चीज़ों की तरह बेचने और खरीदने का सौदा ही वहाँ चल रहा था। मज़दूरों की संख्या ठीक कराने के ठेकेदारों के परिश्रम के बीच में पड़कर कभी-कभी उनको अपने रिश्तेदारों और मित्रों से भी बिछुड़ना पड़ा। “सागर तट में अपने को लेनेवालों की प्रतीक्षा में रात भर उनको भूखे बौठने पड़ते हैं। लोग सबह होने की प्रतीक्षा में बठे रहे। भारतीयों को पोर्ट लुईस से लाने का सरदारों का काम अब पूरा हो गया था। उन्होंने यहाँ के लोगों से कह दिया तुम लोगों का अपना ही यार है। इन्हें संभालकर रखना और यहाँ का कायदा समझा भी देना।”⁵

औरतों के प्रति बुरा व्यवहार : मॉरिशस देश में पहुँचने के बाद भारतीय औरतों के प्रति गोरों का व्यवहार बहुत बुरा था। एक गोरा अपने मित्रों को

जागीर दिखाने ले आया था। तब वहाँ कुछ लड़कियाँ नदी में कपड़े धोने आयी थीं। एक साथ इतनी लड़कियों को सामने पाकर वह उस छोटी उम्र में विरासत के अपने खून पर उतर आया। आदों अब घोड़े से नीचे उतरा और अपने एक मित्र के घोड़े को लड़कियों पर धकेलने लगा। उसने अपने हाथों से देवती के धुले हुए सारे कपड़े छितरा दिए। देवती रो पड़ी।

एक लड़की को कपड़े निकाल लाने में सफल देखकर लड़कों ने उसकी - सायरा की - बालटी पानी में फेंक दी। वह रोने लगी। मौसी को अब मुँह खोलना पड़ा। उसने लड़कों को गाली दी। लड़के तिलमिलाते हुए उसे मारने लगे। यहाँ तक कि लड़कों ने मौसी के शरीर के सारे कपड़े तार-तार कर दिए। मौसी नंगी अवस्था में सब के सामने थी। धानी ने अपनी ओढ़नी उतारकर मौसी पर रख दी। आदों चाबुक से मौसी को मारने लगे। लड़कियों को बचाने के लिए मौसी ने सारी मार खायी। उनके शरीर से खून बहने लगा।⁶ इसी मार-पीट के कारण कुछ दिन बाद मौसी की मृत्यु हुई।

गोरों के विरुद्ध शपथ उठाकर अपनी औरतों की रक्षा करने के लिए आनेवाले पुरुषों को मार-पीट खानी पड़ती थी या अपनी जान खो जाती थी। गिरमिटिया मज़दूरों के परिवार की नारी की इज़्जत गोरे मानते नहीं थे। उनको गोरों के बच्चों को जन्म देना भी पड़ता था। इसी कारण कभी नारियाँ आत्महत्या भी कर लेती थीं।

कठिन काम और कम वेतन : “मॉरिशस की पत्थरीली भूमि पर कड़ी धूप में मज़दूरों को काम करना पड़ा। यहाँ के मज़दूरों को अपनी पीठ पर पत्थर ढोकर चिमनी के लिए ऊपर पहुँचाना पड़ता था।

सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी।”⁷ अपने पसीने से इन्होंने उस भूमि को फलदायक बनाया। पत्थर को तोड़-तोड़कर खेती की उपजाऊ मिट्टी तैयार करने का काम इनको दिया गया। उन्हें पत्थर तोड़ने, मेड़ बनाने और इधर-उधर के छोटे मोटे कामों में भेजा जाने लगा। इस तरह खेतों को खून पसीने से हरा भरा बनाने की ज़िम्मेदारी भारतीय मज़दूरों के नाम चढ़ गई। “खेतों को हरा भरा बनाने में ऐसी शक्ति दिखाओ कि लगे ज़मीन को साक्षात् सोने का रंग मिल गया। यही नहीं, बल्कि पत्थर से भी भिड़ो। भिड़ंत ऐसी कि दुनिया के लोगों ने न देखा हो, न सुना हो। हम से दुनिया जानेगी पत्थर कैसे सोना बनता है। एक एक पत्थर, चट्टानी पत्थर, पत्थर ही पत्थर”⁸ वास्तव में गिरमिटिया मज़दूर काम बहुत करते थे, वेतन कम मिलते थे। उन्हें विश्राम के बिना काम करना पड़ा। पहले यहाँ आये मज़दूरों की हालत को जाने बिना और मज़दूर भारत से आते रहते थे। इसका चित्रण ‘पथरीला सोना’ में है।

कैवल ने भारतीय कैदियों से जान लिया था कि अब भी भारतीयों को लाया जाता है। किन्तु मॉरिशस में वे भी शर्तबंद मज़दूर के रूप में ही आते हैं। किंतु यहाँ पहले आये लोगों की तरह उनकी नियति पर भी दुर्भाग्य की स्याही पोती जाती है। वे घने जंगलों को खेतों में परिवर्तित तो करते ही हैं। पहले की तरह इनसे भी यही कहा जाता है कि “पत्थरों को अपने कंधों पर ढोकर उनके नीचे की ज़मीन को ईख के खेतों के लिए उपजाऊ बनाओ। कड़े आदेश के अनुसार मज़दूरों की मेहनत से पथरीली ज़मीन ईख के खेतों में बदलती जाती है। उनकी मेहनत के प्रतिफलन में उपजाऊ ज़मीन को सोना कहें तो कहना यह भी चाहिए कि मज़दूरों की मेहनत, पत्थर भी सोना ही होता है पथरीला सोना।”⁹

भौगोलिक दृष्टि से मॉरिशस घने जंगलों और पहाड़ों से भरा हुआ था। इसलिए यहाँ काम करना बहुत कठिन है। काम में कोई विलंब आने पर मज़दूरों की मार-पीट भी होती थी।

सामाजिक अस्मिता : हर एक व्यक्ति के सामाजिक महत्व के लिए उसकी अस्मिता एवं पहचान की आवश्यकता है। प्रवासियों के संबंध में यह एक बहुत बड़ा सवाल है। मारीच देश में आते समय भारतीय मज़दूरों के मन में जीवन यापन का विचार ही था। लेकिन पराये देश में अपनी अस्मिता स्थापित करना इनके सामने एक समस्या बन गयी। तब उन्होंने सोचा, “फ्रांसीसी इस देश को बांस का एक टुकड़ा मानकर इसे फ्रांस कहते हैं। यह देश फ्रांस का टापू कहलाए तो मेरा इस बात पर ज़ोर है कि यहाँ तनी संख्या में भारतीयों के रहने से इस देश को छोटा भारत क्यों कहा नहीं जा सकता”¹⁰

मॉरिशस में भारतीयों की बस्तियाँ बहुत थीं। सांस्कृतिक गतिविधियों में वे सक्रिय रूप से भाग लेते थे। इस देश में चारों ओर भारतीयता छयी हुई है। लोग मंदिरों से जुड़ने के लिए मन प्राण से आगे रहते हैं। पूजापाठ और अपनी संस्कृति सभ्यता में जीने की लोगों की बेचैनी अंतहीन है। भारतीय भारत नाम के अपने एक घर से निकलकर मॉरिशस नाम के दूसरे घर में पहुँचे हैं। पर यह घर भारतीय मज़दूरों का अपना कहलाने से बहुत दूर है। इसे विडंबना ही कहेंगे कि भारतीय मज़दूरों को यहाँ किरायेदार माना जाता है। कुल परिणाम सामने यह है कि भारतीय मज़दूरों की स्वतंत्रता कैदी की है। भारतीय मज़दूरों की अवस्था देखिए - “अब तुम लोग यहाँ से भारत लौट नहीं सकते और लौटने के लिए तुम्हें सोचना भी नहीं

चाहिए। किरायोदार माने जाते हो तो दिखाकर रहो कि देश तुम्हारा भी है।”¹¹ अपने हाथों से बनाये देश में पराये लोगों की तरह जीना आत्मसम्मान की हत्या है। गोरे लोग भारतीयों को जंगली मानते थे। इसलिए राजनीति में भाग लेकर अपने अधिकारों की माँग के लिए ये जागृत हो जाते हैं। इसके लिए मॉरिशस में गांधीजी का आगमन बहुत सहायक हुआ। अपनी अस्मिता और अधिकारों को स्थापित करने के लिए शिक्षा और राजनीति की आवश्यकता के बारे में गाँधीजी ने उनको समझाया।

सांस्कृतिक समस्या: अन्य देश में जीने के कारण होनेवाला सांस्कृतिक अंतर का इनको भी सामना करना पड़ा। भारत से वहाँ पहुँचे लोगों की धार्मिक संस्कृति बहुत निष्ठ थी। लोगों के बीच रामायण, गीता और महाभारत की कहानियाँ चल रही थीं। दाऊद ने कुरान के बारे में कुछ ऐसी ही बातें कहीं। “बिहार में थे तो कुरान रखने की आदत थी। यहाँ तो समझो कुरान के बिना अनाथ होकर रह गए। बस, नमाज़ अदा करने की एक आदत साथसाथ चल रही है। अल्लाह इस आदत को बनाए रखे। जवानों से कहा गया अपना धर्म न छोड़ें।”¹²

लेकिन गोरे इनके धार्मिक आचारों के विरुद्ध थे। उन्होंने सोचा कि भारतीय धार्मिक पाठ के लिए इकट्ठे होकर उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचाएँ। उन्होंने धर्म-परिवर्तन के लिए लोगों को रुपये और अन्य सुविधाएँ दीं। “कैवल ने जेल से बाहर काम पर जाते वक्त भारतीयता को खंडित करनेवाली जो विचित्रता देखी थी उसकी प्रतिच्छाया यहाँ भी डोल रही थी। बहुत से बिहारी और मद्रासी ईसाइयत में दीक्षित होकर पादरियों के साथ मिलकर ईसाई धर्म का प्रचार करते थे।”¹³

“अपनी सांस्कृतिक अस्मिता छोड़ने के लिए गिरिमिटिया मज़दूर तैयार नहीं थे। रोज़ी रोटी से कहीं ऊपर की थी यह पहचान और अस्मिता। पूजा के बिना तो लोगों को अपना जीवन बेहद अधूरा लगता था। अड़चनें आईं, लेकिन लोगों ने अपनी इस अस्मिता का ध्वंस होना स्वीकार नहीं किया। गोरे मालिक और उनके पादरी कितनी भी बंदिशें लादते थे। लोगों ने फिर भी अपनी संस्कृति की भावना को जी कर बता दिया।”¹⁴ मॉरिशस में एक छोटे भारत के निर्माण के लिए उनकी यही निष्ठा सहायक बन गयी। अपनी निष्ठाओं को कायम रखने के लिए भी इनको संघर्ष करना पड़ा।

शिक्षा की समस्या : गिरिमिटिया मज़दूरों को अपने बच्चों को पढ़ाने की बहुत कम सुविधाएँ थीं। गोरों के बच्चे अच्छे अच्छे स्कूलों में पढ़ते थे। लेकिन मज़दूरों के बच्चों को शिक्षालय की कमी थी और वहाँ तक पहुँचने के लिए बहुत अधिक कष्टताएँ झेलनी पड़ती थीं। गाँवों में सरकारी पाठशाला होती थी तो एकाध ही। वह भी किसी गाँव से इतनी दूर थी कि नौ बजे शुरू होनेवाली पाठशाला के लिए सूर्योदय के साथ घर से निकलें तो समय पर पहुँच न पाएँगे। वापसी में दिक्कत यह कि तीन बजे बच्चे पाठशाला से छूटें तो रात होते वक्त घर को लौटें।”¹⁵ सब मज़दूर अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते थे और पढ़ना बच्चों का अधिकार है, लेकिन उस समय के मज़दूर लोग अपने अधिकारों के संबंध में अज्ञ थे। इस अज्ञता का शोषण वहाँ हो रहा था।

भाषिक समस्या: हिन्दी के प्रति सरकार की उपेक्षा एक समस्या थी। भारत के विभिन्न प्रांतों से आने के कारण लोगों की भाषाएँ भी भिन्न थीं। फिर भी भोजपुरी और हिन्दी मुख्य भाषाएँ थीं। हिन्दी भाषियों की संख्या

अधिक थी। लेकिन गोरे लोग मज़दूरों की भाषा को जंगली भाषा मानते थे। इसलिए मज़दूर नेता लोगों ने भारतीयों को समझाया कि “अपनी भाषा पर गर्व करो। तुम भाषा में कंगाल नहीं हो। भारत से तुम्हारे साथ जो भाषा आई है वह भाषा तो असाधारण है। यहाँ केवल इतना हो रहा है कि जिसके हाथ में सत्ता है वह अपनी इच्छा से सब को हाँक रहा है। हमारे भारत में भी तो यही हो रहा है। अंतर केवल इतना है कि यहाँ फ्रेंच से हमें विवश बनाया जाता है और वहाँ अंग्रेज़ी से। देशराज, तुम जानते हो सत्ता और शक्ति जिसके हाथ में होती है वह केवल अपना अहंकार जानता है। हम यहाँ उसी अहंकार के शिकार हो रहे हैं।”¹⁶

हिन्दी एक संस्कृति है, लेकिन गोरे अधिकारी लोग हिन्दी की ओर उपेक्षा भरी दृष्टि रखती थी। वहाँ के बिरज सरकारी स्कूल में हिन्दी अध्यापक थे। हिन्दी के लिए तो मानो पहाड़ तोड़ना जैसा काम होता था। सरकार और हिन्दी की अवमानना करनेवालों को यह समझाने का प्रयास चलता रहता था कि हिन्दी से एक जाति की अस्मिता और संस्कार जुड़े हुए हैं। हिन्दी को न मानोगे तो इसका मतलब हुआ एक पूरी जाति की सबअवहेलना कर रहे हो।”¹⁷ हिन्दी के प्रचार के लिए वहाँ बहुत लोगों ने परिश्रम किया। एक भाषा उसे बोलनेवालों का प्राण है। अपनी भाषा को बनाये रखने के लिए भी गिरमिटिया मज़दूरों को संघर्ष करना पड़ा।

उपन्यासकार रामदेव धुरंधर ‘पथरीला सोना’ उपन्यास में भारत से मॉरिशस पहुँचे गिरमिटिया मज़दूरों की समस्याओं का चित्रण करके वहाँ हुए मानव के अधिकारों के उल्लंघन की ओर इशारा करते हैं। यह उपन्यास केवल कल्पना का नहीं, अनुभवों के चूल्हे में पकी हई जिन्दगी की दस्तावेज़ है।

‘पथरीला’ शब्द का अर्थ है ‘पत्थरों से युक्त’। इस उपन्यास में कठोर पत्थरों से युक्त मॉरिशस की ज़मीन के पत्थरों को तोड़-तोड़कर भूमि को उपजाऊ बनानेवाले, सोना उगने योग्य बनानेवाले भारतीय मज़दूरों की जीवन गाथा मिलती है। अतः शीर्षक बड़ा प्रभावी और उचित लगता है।

संदर्भ

1. पथरीला सोना, रामदेव धुरंधर, भूमिका।
2. पथरीला सोना (प्रथम खंड), रामदेव धुरंधर, पृ.सं. 16
3. वही, पृ.सं. 16
4. वही, पृ.सं. 18
5. वही, पृ.सं. 18
6. वही, पृ.सं. 40
7. वही, पृ.सं. 51
8. वही, पृ.सं. 81
9. पथरीला सोना (दूसरा खंड), पृ.सं. 8
10. वही, पृ.सं. 45
11. वही, पृ.सं. 45
12. वही, पृ.सं. 7778
13. वही, पृ.सं. 46
14. पथरीला सोना (प्रथम खंड), पृ.सं. 82-83
15. पथरीला सोना (दूसरा खंड), पृ.सं. 47
16. पथरीला सोना (प्रथम खंड), पृ.सं. 114
17. पथरीला सोना (चतुर्थ खंड), पृ.सं. 52।

आधार ग्रंथ

1. पथरीला सोना, भाग -1, 2 और 3; इंटरनेट कॉपी, वर्ष 2015।
2. पथरीला सोना, भाग -4, प्रकाशक : हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली, वर्ष 2012।

♦ सहायक आचार्या, के.के.टी.एम कॉलेज, पुल्लूट, कोट्टुडुल्लूर।

अस्योत्तर महिला कहानीकारों की कहानियों में चित्रित नारी के बदलते परिवेश



• डॉ.जयश्री.ओ

साहित्यकार अपने परिवेश के प्रति सतत सावधान रहता है, क्योंकि यह परिवेश ही उसके साहित्य-सृजन का प्रेरक तत्व बनता है। साहित्यकार अपने परिवेश से वर्ण्य विषय का चयन करता है और उसी के आधार पर अपनी कल्पना के माध्यम से उसे साहित्यिक रूप देता है- “जहाँ तक साहित्यकार की ईमानदारी एवं उत्तरदायित्व का प्रश्न है, वहाँ भी यही बातें सामने आती हैं, कि उसे अपने परिवेश के प्रति जागरूक रहना चाहिए, उसे युग सापेक्ष विचारधाराओं को निर्मित स्वीकृति देनी चाहिए और उसे बदलते परिप्रेक्ष्य को स्वीकार करते हुए उन समस्त दृष्टिकोणों को स्थापित करना चाहिए, जो परम्पराओं के विरोध में उभरते चले आते हैं।”¹ साहित्य की अनेक विधाओं में ‘कहानी’ तत्कालीन समाज की उपज है। लेकिन बदलते परिवेश के अनुसार कहानी के कथ्य और शिल्प दोनों पर परिवर्तन होता जाता है। पहले कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन था। बाद में उसका उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति और जीवन की आलोचना हो गया।

यों कहानी का परिवेश समकालीन जीवन-यथार्थ बन गया। नयी समाज व्यवस्था की स्थापना के फलस्वरूप संवेदना के स्तर पर भी बदलाव आया। इस बदली हुई संवेदना को कहानी के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया। जीवन की नई स्थितियों के उद्घाटन ने पुरानी संवेदना अथवा भावबोध को नवीन सन्दर्भ में नया आयाम प्रदान किया। अतः कहानी के विविध पक्षों का अध्ययन करना और विभिन्न रीतियों से उसका विश्लेषण करना अनिवार्य हो गया। नारी चिंतन भी इनमें एक है। महिला लेखिकाओं की कहानियों में नारी के विविध पक्षों पर विचार करना इस दृष्टि से बहुत संगत है।

भूमण्डलीकरण, भौतिक सुख-सुविधाओं के विकास, सूचना प्रौद्योगिकी आदि के प्रभाव ने जीवन की कोमलता, श्रेष्ठता, पारस्परिक संबंध आदि के अर्थ को नया आयाम प्रदान किया। जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण होने के कारण नारी - चित्रण में भी बिल्कुल परिवर्तन आया। आस्योत्तर महिला कहानीकारों ने अपनी कहानियों में नारी के इस बदलते परिवेश का जो चित्रण

किया है वह प्रौढ़ और उज्ज्वल है। अस्स्योत्तर महिला कहानीकारों में मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चन्द्रकांता, चित्रा मुद्गल, सूर्यबाला, मेहरुन्निसा परवेज़, सुमन मेहरोत्रा, सरोजिनी कुलश्रेष्ठ आदि नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

भारतीय वाङ्मय में नारी के विविध रूपों का आनुपातिक महत्व विवेचित है। भारतीय समाज पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि काफ़ी पुरातन काल से समाज में कन्या की हैसियत अत्यंत श्रेष्ठ मानी जाती थी। लेकिन धीरे-धीरे इस स्थिति में बदलाव आया। कन्या, जो कि नारीत्व की प्रथम सीढ़ी है, इसे नितान्त उपेक्षित महसूस किया जाने लगा। इसके जन्म से ही माता-पिता पर फिक्र सवार हो जाती है। भ्रूण-हत्या, कन्यावध जैसी भयानक स्थितियाँ उत्पन्न होने लगीं। सुधारवादी आन्दोलन ने नारी जगत् को सुलझाने का निरन्तर प्रयत्न किया। अस्स्योत्तर हिन्दी कहानी लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी-जागरण की इस लहर को भरपूर रोशनी दी है। विवाह से लेकर जीवन के अनेकानेक प्रश्नों पर स्वतः अपनी राय रखने के साथ-साथ अपने व्यक्तित्व के प्रति सदा जागरूक रहनेवाली अनेक कन्यापात्र अस्स्योत्तर कहानियों में देखने को मिलती हैं। अब वह परिवार में कठपुतली न होकर एक दृढ़ संज्ञा के रूप में खड़ी दिखाई पड़ती है। श्रीमती मृदुला सिन्हा के शब्दों में “ज़रूरत है अपने सोच में परिवर्तन करने की। बेटा-बेटी

को मात्र बराबर ही नहीं, बेटी को विशेष मानकर शिक्षा, संस्कार, सुरक्षा और सुविधाएँ उपलब्ध कराने की। बचपन से बालिकाओं में यह भाव भर जाने की ज़रूरत है कि वह अपने भाइयों से विशेष है - बराबर नहीं।”² अस्स्योत्तर महिला कहानीकारों ने अपनी कहानियों में इस स्वर को अधिक बल दिया है। मन्नू भण्डारी की ‘क्षय’ नामक कहानी की कुन्ती, चित्रा मुद्गल की ‘प्रतियोनि’ कहानी की अनीता, उषा यादव की ‘आत्मजा’ कहानी की दीपा जैसी पात्र इसके उत्तम उदाहरण हैं।

अस्स्योत्तर महिला कहानीकारों ने स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंधों का चित्रण व्यापक ढंग से किया है। परम्परागत नारी पति के प्रति निष्ठावान होती है, पति को सर्वस्व मानकर उसके अन्यायों को चुपचाप सहन कर लेती है। लेकिन नारी आज इन्हीं परम्परागत मान्यताओं को तोड़कर घर की चहार दीवारी लांघ गई है, जो कार्य उसके जीवन को नया मोड़ दे रहा है। पति को देवता मानकर पूजने की परंपरा टूटती जा रही है। वर्तमान स्त्री शादी के बाद स्थानबद्ध हो जाती है, किंतु वह कठपुतली नहीं बनती है। उसके भीतर दमन के प्रति विद्रोह की आग है। अस्स्योत्तर कहानियों में नारी-जागरण का यही सन्देश सब कहीं मुखरित है। यह कथन सही है कि “हम औरतें भूलने का गुर घुड़ी में पीकर पैदा होती हैं। जो मिल जाये उसको भी भूल जाओ, जो न मिले उसको भी भूल जाओ। न पीछे देखो न आगे।”³

अस्स्योत्तर कहानियों में जहाँ एक ओर अपनी स्वतंत्र अस्मिता के आधार पर निजी जीवन-स्वप्न को लेकर चलनेवाली नारियों का चित्रण मिलता है वहाँ दूसरी ओर पुरुष की सहयोगी बनकर आत्मविश्वास एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता से जीनेवाली नारी का उज्ज्वल चित्रण भी मिलता है। 'होगी, जय होगी जय..... पुरुषोत्तम नवीन' नामक कहानी में अरुण वर्मा की पत्नी वसुधा द्वारा लेखिका सूर्यबाला ने एक स्त्री की आर्थिक आत्मनिर्भरता का अच्छा चित्रण किया है। वसुधा अपने पति को मिले सस्पेंशन आर्डर से ज़रा भी विचलित न होकर उसे अपने स्टैंड पर बने रहने के लिए प्रेरित करती है, आश्वासन भी देती हैं- "जानती हूँ जिस व्यक्ति का परिवार उस पर आश्रित हो, उसकी बाध्यता, सीमाएँ होती हैं, एक हद से आगे नहीं जाया जा सकता। लेकिन यहाँ हमारे केस में तो मैं तुम्हें स्वतंत्र करती हूँ.... मेरी भी महत्वाकांक्षा समझ लो, टॉनिक नहीं पिला तो क्या?"⁴

आज की बदली हुई स्थितियों में संबन्ध-विच्छेद के बाद नारी या पुरुष अकेलापन का अभिशाप भोगने को बाध्य नहीं है। मनोविज्ञान को मान्यता देने के फलस्वरूप नैतिकता संबन्धी मान्यताओं में भी अन्तर आया है। परिवार नाम की संस्था पति और पत्नी दोनों के सहयोग, परिश्रम और बलिदान से पोषित होती है, लेकिन जहाँ पति-पत्नीदोनों आत्मकेन्द्रित हो वहाँ विवाह जैसी संस्था खंडित हो जाती है। ऐसी स्थिति में

आधुनिक नारी पति को अपनी अंतिम नियति मानकर जीना नहीं चाहती है। वह उसके साथ बराबरी का रिश्ता बनाकर रहना चाहती है, मित्रवत् रहना चाहती है। अगर वह संभव नहीं होता तो उसे पति हो या कामुक उसका परित्याग करने और स्वतंत्र जीवन जीने से कोई रोक नहीं सकता। इस दृष्टि से सुमन मेहरोत्रा, मणिक मोहिनी, अपर्णा चतुर्वेदी जैसी लेखिकाओं की कहानियाँ अत्यंत सराहनीय हैं। श्रीमती अपर्णा चतुर्वेदी की कहानी 'किसी के लिए' की रेश्मा का यह कथन इसका उत्तम उदाहरण है- "ऐसा कभी हुआ है। लड़की एक बार बीबी बनती है। मैं अपने उस हक को छोड़ूँगी नहीं। इतना ध्यान रखना तपन मेरी ज़िन्दगी का वह टुकड़ा मुझसे छुड़ेगा तो नहीं, लेकिन उसीको लेकर ज़िन्दगी गुज़ार देना मुझे मंजूर नहीं।"⁵

माँ की अनिवार्यता पर कोई दो राय नहीं पैदा होती है। यह समाज का अच्छा पहलू है। सभी कालों का साहित्य स्त्री के मातृत्व की गरिमा को स्वीकार करता है। अस्स्योत्तर हिन्दी कहानी भी इसका अपवाद नहीं है। अस्स्योत्तर महिला कहानीकारों ने मातृसंवेदना के विभिन्न आयामों का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। श्रीमती मन्नू भण्डारी की 'मज़बूरी', मालती जोशी की 'कोख का दर्प', नासिरा शर्मा की 'चार बहनें शीश महल की', उषा प्रियंवदा की 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल', कृष्णा अग्निहोत्री की 'ओक्टोपस', सरोजिनी कुलश्रेष्ठ की 'वे किस देश गये' आदि

कहानियाँ मातृत्व की गरिमा की उद्घोषक हैं। यदि बेटा बेरोज़गर हो और परिवार बेटी की कमाई पर चलता है तो समझदार माता की चिंता का ठिकाना नहीं होता। ऐसी माँ का जीवन्त चित्रण श्रीमती उषा प्रियंवदा ने 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' नामक कहानी में किया है- "माँ ने दो एक बार उसे देखा ज़रूर, पर कुछ नहीं। पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी रहीं, ऐसी मूर्ति जिसकी केवल आँखें थीं।"⁶

भारतीय समाज में एक ज़माना ऐसा था कि नारी का व्यक्तित्व पति के साथ जुड़ा हुआ था और उसके पद, सम्मान की कसौटी पति ही थी। लेकिन दुर्भाग्य से स्त्री के मस्तक का सिंदूर घुल गया तो उसके लिए संसार ही नष्ट होता है। वह समाज के लिए एक बोझ, परिवार के लिए अनावश्यक दायित्व और खुद में पीड़ा की एक गठरी होती है। लेकिन वर्तमान काल में विधवा या परित्यक्ता नारी परंपरागत आचारों को निशब्द सहन करने के लिए तैयार नहीं है। अब वह अबला नहीं है। अन्याय का सहन करनेवाली पुरानी नारी के बदले वर्तमान नारी में अपनी अस्मिता का बोध है। झूठ को झूठ और सच को सच कहने की हिम्मत अब उसमें आ गई है। अस्स्योत्तर महिला कहानीकारों की कहानियों में हमें ऐसी अनेक विधवा नारियों का जीवन्त चित्रण मिलता है, जो अपने प्रति होनेवाले अत्याचारों के विरुद्ध प्रतिरोध या प्रतिशोध करती हैं। श्रीमती मैत्रेयी पुष्पा की 'पगला गई है भागवती' कहानी इसका

उत्तम उदाहरण है। लेखिका कहती हैं कि यथार्थ के लिए यदि वह खड़ी हो गई तो उसका मुकाबला नहीं कर सकता - 'घायल माधोसिंह बेहोश हो गए हैं। चारों ओर शोर मचा हुआ है। किसने मारा, किसने मारा। गली-मुहल्ला, घर-बखरी, कोना-कोना तक छान मारा गया। लेकिन पता नहीं लगा कि पत्थर कहाँ से आया। अन्त में लाला की छत पर से जिसे पकड़कर लाया गया वह तो वास्तव में भागो थी। 'भागो का आक्रोश यों है- "ओ अधरमी! अन्यायी! ठाकुर माधो! आज बेटा-बहू के स्वागत में मरे जा रहे हो तुम? खुशी में असपेर भर के गाँव जिंवा रहें!"'⁷ इसी प्रकार श्रीमती सरोजिनी कुलश्रेष्ठ की कहानी 'अभिषप्त' की पात्र पारुल, उषा यादव की 'सर्पदेश' की नायिका दिव्या जैसी पात्रों के माध्यम से लेखिकाओं ने दर्शाया है कि आधुनिक नारी चाहे वह विधवा हो या परित्यक्ता हो वह दबाव या घुटन में जीना पसन्द नहीं करती है। परंपरा को ओढ़कर जीना आज की स्त्री को स्वीकार नहीं है। वह आत्मनिर्भर होकर जीना अपना जीवन ध्येय मानती है।

आधुनिक युग में नारी हमेशा कामकाज में अपना हिस्सा लेती रहती है। यह केवल जीविकोपार्जन के लिए या पैसा कमाने से अधिक एक सामाजिक पहचान के लिए भी है। कामकाजी औरतों को घर और कर्मक्षेत्र में अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है। उस समय भी वह संवेदनशील, समझदार तथा अपने अस्तित्व के प्रति सजग

रहती है। मन्नूभण्डारी, मालती जोशी, सरोजिनी कुलश्रेष्ठ जैसी लेखिकाओं ने अपनी अनेक कहानियों में कामकाजी नारी की आत्मनिर्भरता एवं स्वत्वबोध पर अधिक बल दिया है। श्रीमती मालती जोशी की कहानी 'आऊट साइडर' में नीलम नामक कामकाजी नारी की परिपक्वता एवं आत्मनिर्भरता भरा कथन इसका उत्तम उदाहरण है- "अपनी अलका रानी को समझा देना कि मेरेलिए इतना परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। मैंने ज़िन्दगी की किताब से वे पेज बहुत पहले फाड़कर फेंक दिये थे जिनपर शादी की इबारत लिखी हुई थी।"⁸

इसप्रकार अस्स्योत्तर महिला कहानीकार अपनी कहानियों में नारी के बदलते परिवेश को नया आयाम देकर अपने सृजन का साधन बना रही हैं। वे सब अपनी स्त्री पात्रों के द्वारा स्त्री जाति को यही समझाती हैं कि स्त्री-शाक्तीकरण का मतलब पुरुष वर्ग को परास्त करके स्वतंत्र जीने से नहीं, बल्कि अपनत्व को स्वीकार करके चुनौतियों को सदैव झेलने की क्षमता प्राप्त करना है। साथ ही साथ नारी की दयनीय स्थिति से ये सब लेखिकाएँ चिंतित हैं, इसलिए ही वे स्वीकार करती हैं कि "दुर्भाग्य नहीं, सौभाग्य नहीं, महज़ संयोग है कि मेरे हिस्से स्त्री का वही वर्ग आया जो अर्थ और शिक्षा के हिसाब से दीनता का शिकार है या घूरे का कचरा माने जाने के लिए

अभिशाप्त है।"⁹ वास्तव में नारी के अभिशाप्त जीवन को नया आयाम, नया तेवर देने का प्रयास ही अस्स्योत्तर महिला कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में किया है।

संदर्भ

1. पृ.सं.133, डॉ.सूर्यबाला की कहानियों में नारी के विविध रूप - डॉ.बलवंत, प्रकाशक: रोळबुक डिस्ट्रिब्यूटेर्स।
2. पृ.सं.25, साठोत्तर हिन्दी कहानीकारों में नारी-डॉ.पुष्पा गायकवाड, प्रकाशक: विकास प्रकाशन, कानपुर।
3. पृ.सं.93, 'यह किसका कसूर' संकलन ('है कोई जबाब' कहानी), सुमन महरोत्रा, प्रकाशक: श्याम प्रकाशन, जयपुर।
4. पृ.सं. 106, 'गृह प्रवेश' कहानी संकलन, सूर्यबाला, प्रकाशक: ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली।
5. पृ.सं.106, 'धूप छाँव' संकलन, अपर्णा चतुर्वेदी, प्रकाशक: संगम प्रकाशन, इलाहाबाद।
6. पृ.सं.51, मेरी प्रिय कहानियाँ, उषा प्रियंवदा, प्रकाशक: वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. पृ.सं. 329, समग्र कहानियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, प्रकाशक: किताब घर प्रकाशन।
8. पृ.सं. 125, साठोत्तर हिन्दी कहानीकारों में नारी, डॉ.पुष्पा गायकवाड, प्रकाशक: विकास प्रकाशन, कानपुर।
9. वही।

♦ असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
यूनिवर्सिटी कॉलेज
तिरुवनन्तपुरम, केरल
फोन : 9539204383

प्रथम विज्ञान काव्य - 'कल्पांतर'



• डॉ.धन्या.एल

आधुनिक हिन्दी कविता के विकास-क्रम में श्री. गिरिजाकुमार माथुर को हम हिन्दी कविता के समर्थ आधार स्तंभ के रूप में पाते हैं। मध्यप्रदेश के 'अशोक नगर' क्षेत्र में 'पछार' नामक कसबे में 22 अगस्त 1919 को एक मध्यवर्गीय कायस्थ परिवार में माथुरजी का जन्म हुआ। बाल्यकाल से ही कविता के प्रति रुचि तथा कवि - संस्कार माथुर में विद्यमान थे। माथुरजी एम.ए (अंग्रेज़ी) तथा एल.एल. बी तक की शिक्षा पाने के बाद प्रारंभ में वकालत की फिर दिल्ली सचिवालय में नौकरी की। उसके बाद उन्होंने आकाशवाणी तथा दूरदर्शन में उप महानिदेशक रहे। वे 'गगनांचल' के संपादक भी रहे।

माथुरजी ने अपने प्रयोगशील, सार्थक काव्य से हिन्दी काव्य जगत को महत्वपूर्ण कृतित्व प्रदान किया। उनकी प्रतिभा बहुरंगी, बहुआयामी है। उन्होंने काव्य के अतिरिक्त नाटक, एकांकी तथा आलोचना के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी पहली रचना सन् 1936 में 'कर्मवीर' में प्रकाशित हुई। रचनाएँ इस प्रकार हैं - मंजीर

(1941), नाश और निर्माण (1946), धूप के धान (1955), जनम कैद (नाटक, 1957), शिला पंख चमकीले (1961), जो बंध नहीं सका (1966), नई कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ (आलोचना, 1966), भीतरी नदी की यात्रा (1975), छाया मत छूना मन (गीत - काव्य, 1978), साक्षी रहे वर्तमान (1979), कल्पांतर (विज्ञान - काव्य, 1983), मैं वक्त के हूँ सामने (1991), मुझे और अभी कहना है (1994, मरणोपरांत), पृथ्वीकल्प (काव्य - नाटक 1994, मरणोपरांत) आदि। - 'मैं वक्त के हूँ सामने' कृति को सन् 1991 में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' और 'व्यास सम्मान' प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त उन्हें 'पृथ्वीकल्प' नामक नाट्य काव्य को चेकोस्लाविया सरकार का पुरस्कार (अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार) प्राप्त हुआ।

1940 से 1991 तक के वर्षों में हिन्दी कविता के लिए माथुर का योगदान महत्वपूर्ण है। उनकी गणना अपने युग के कालजयी और सार्वजनिक रचनाकारों में होती है। वे छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, नवगीत, अकविता तथा उसके बाद के काव्य आंदोलनों

से जुड़े रहे, परंतु वाद से मुक्त रहे। जीवन के 76 वर्ष पूरा करने के बाद 10 जनवरी 1994 को अपनी जीवन - यात्रा पूरी कर इस संसार से विदा हुए। परन्तु उनकी रचनाओं ने उन्हें 'कालजयी' ही रखा है। उन्हींके शब्दों में -

“चिर स्वर्ग जहाँ करते निवास
सुख परियों का कोमल विलास
नव - नव किरणों का मृदल हास
खिल - खिल पड़ता चिन्मय प्रकाश
है जिस क्षितिज में मिला प्यार
में चला आज उस विश्व पार”¹

माथुर की काव्य-यात्रा लंबी और अपने ढंग की है। श्री रामविलास शर्मा के शब्दों में - “उनका किशोर मन न वयस्क होता है, न प्रौढ़, वार्धक्य तो दूर की बात है।”²

‘कल्पांतर’ (1983) माथुर की नवम काव्य - कृति है। यह हिन्दी साहित्य का प्रथम ‘विज्ञान - काव्य’ है। विज्ञान के प्रभाव तथा नवीन भौतिकवादी चिंतन के कारण स्वातंत्र्योत्तर भारत के सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेश में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। प्राचीन एवं मध्ययुगीन सांस्कृतिक परंपराओं का परित्याग एक तरह से वर्तमान विज्ञानवादी युग की आवश्यकता भी हो गई थी। भौतिक विकास के साथ - साथ मानव भौतिकेतर चिंतन की ओर भी प्रवृत्त होता है। माथुर ‘कल्पांतर’ में इसीका उदाहरण देते हैं -

“मूल्य बाज़ार में बिकते हैं
विक्रय होता आदर्शों का
देश, व्यक्ति का, संस्कृतियों का
लोकतंत्र भी यहाँ जाल है
आत्मा, अन्तः करण माल है।”³

माथुर की काव्य - यात्रा का एक नया वैचारिक मोड़ है - ‘कल्पांतर’, जो ‘विज्ञान - काव्य’ है। इसकी प्रेरणा के मूल में न तो कोई ऐतिहासिक - पौराणिक आख्यान है, न कोई प्रतीक कथा। इसमें उत्तराधुनिक समाज की बेचैनी और भयावहता के संदर्भों को उजागर किया गया है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्पन्न नव्य साम्राज्यवादी, नव्य पूंजीवादी विकृतियों को विज्ञान एवं राजनीति के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। ‘ग्लोबलाइज़ेशन’ की मूल ‘नियति’ पर कई कोणों में से विचार किया गया है। माथुरजी ने इस विज्ञान - काव्य का मूल आलेख अपनी पहली विदेश यात्रा से वापसी के बाद सन् 1952 में ही तैयार कर दिया था। तदनंतर 26 मार्च 1952 को इस नाट्य - रूपांतर को आकाशवाणी दिल्ली से प्रसारित किया। फिर 1959 में इसको संपूर्ण रूप दिया। इस विज्ञान - काव्य का लंबा अंश ‘कल्पना’ पत्रिका के अप्रैल 1960 के अंक में प्रकाशित हुआ। सन् 1983 में इस काव्य को समग्र रूप में पुस्तकाकार दिया। पाठक इस विज्ञान काव्य की अंतर्यात्रा में थकान का अनुभव

न करें। उनकी सुविधा के लिए 'कल्पांतर' के निवेदन में माथुरजी ने अपनी इस रचना के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "बीसवीं सदी का अंत हो चुका है। आदमी विशेष रूप से वे जिनके हाथों में सत्ता, साधन और शक्तिमत्ता हैं - आपसी घृणा और लिप्सा से अंधे होकर पृथ्वी से जीवन - क्रम को ही समाप्त करने में क्यों लगे हुए हैं? - ये ऐसे नए और गंभीर प्रश्न हैं जिनका जवाब राजनीति, सत्ता, वर्ग, संप्रदाय, राष्ट्रीय हित, सिद्धांतवाद और पद्धतियों से ऊपर उठकर पृथ्वी और आदमी को केंद्र में रखकर हमें शीघ्र खोजना होगा। 'कल्पांतर' इन प्रश्नों से टकराने का छोटा-सा विनम्र प्रयास है।"⁴

'कल्पांतर' की विषय वस्तु समकालीन दुनिया के बीच से सीधे उठाई गई है और इसमें कथ्य, बिंब, प्रतीक - योजना तथा शैली की एक नूतन काव्यभूमि उद्घाटित हुई है। अंतरिक्ष में फैले अनंत ग्रह नक्षत्रों के बीच पृथ्वी के विराट अस्तित्व और जीवंत अद्वितीयता से काव्य का प्रारंभ होता है। इसमें सभी चरित्र प्रतीकात्मक हैं। इसी प्रकार की प्रतीकात्मकता को स्पष्ट करते हुए क्रूर, ढोंगी और निषेधात्मक देशों को 'लोह - देश' पात्रों के रूप में इलक्ट्रॉनिक युग के यंत्र, रोबर्ट तथा उपग्रहों तक को प्रस्तुत किया गया है। क्योंकि 'कल्पांतर' एक विज्ञान - काव्य है। इसमें भाषा का प्रयोग भी नए ढंग से किया गया है। इसमें समस्त पात्रों का नामांकन वैज्ञानिक आधार पर

किया गया है। जैसे -

“हे स्वर्ण दैत्य!

मैं समाचार, संचार

सूचना के सब अधुनातन साधन

चलचित्र, रेडियो, पत्र प्रदर्शन, टेलिविजन

पुस्तकें, पोस्टर, ध्वनांकन।”⁵

वैज्ञानिक विकास के कारण आज यांत्रिक विकास भी तीव्र गति से हुआ है। माथुरजी के काव्य में वैज्ञानिक प्रतीकों का परिष्कृत और समृद्ध रूप देखा जाता है। माथुरजी ने इतिहास को वर्तमान का शिक्षक तथा भविष्य की आधार भूमि मानी है। 'कल्पांतर' में इतिहास को काव्यात्मक ढंग से परिभाषित करते हुए उसे मानव समाज की पुराण पुस्तक का प्रतीक बना दिया गया है -

“यह पुराण पुस्तक है

मनुज समाज की,

काल - ग्रंथ पृष्ठों से

आती आवाज़ - सी।”⁶

वर्तमान समाज में पाश्चात्य प्रभावों के कारण उच्छृंखल यौन - लिप्सा तथा काम - वासना युवा वर्ग को कुमार्ग पर ले जा रही हैं। 'कल्पांतर' में कल्पित 'काम कन्या' के मुख से कवि ने कहलवाया है -

“छिपती - खुलती जंघाओं की

उन चिकनी काम - अराओं से

स्ट्रिपटीजों, फोलीबर्जों, बरलस्कों से
जन - जन के मन में
कामसूत्र के नए त्रिभंग बिठाऊँगी
संस्कृति पर नग्न वासना की
विकृति की छाप लगाऊँगी।”⁷

विज्ञान - काव्य होते हुए भी ‘कल्पांतर’ में
विश्व मंगल की भावना विद्यमान है। यही कामना
प्रस्तुत पंक्तियों में देखी जा सकती है -

“आवाज़ उठ रही पृथ्वी से
ये बंद करो उन्माद युद्ध का
मत डालो साया धरती पर अणुछत्रों का
लिप्सा और निरंकुशता की
मनुज विरोधी पद्धति छोड़ो।”⁸

गिरिजाकुमार माथुर ने ‘कल्पांतर’ को केवल
एक काव्य - रचना अथवा ‘विज्ञान - काव्य’
नहीं माना है, अपितु उनके मन में उठते अनेक
गंभीर प्रश्नों का संघर्ष तथा उससे प्राप्त समाधान
भी माना है। उनकी रचनाओं में सामाजिक
विसंगतियों, भेदभाव, अन्याय तथा विरोधाभास
पर पूरी रचनात्मक ईमानदारी से प्रहार किए गए
हैं। माथुरजी ने जो कुछ अपने काव्य में अभिव्यक्त
किया है वह सारा उन्होंने स्वयं जीकर, भोगकर
देख लिया है। युद्ध, संत्रास और शांति की समस्या
पर आधारित ‘कल्पांतर’ एक विलक्षण कृति है।

संदर्भ

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य आन्दोलन - डॉ.
जयप्रकाश शर्मा, पृ.सं. 23

2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन
सिंह, पृ.सं. 433
3. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य आन्दोलन -
डॉ.जयप्रकाश शर्मा, पृ.सं. 64
4. वही, पृ.सं. 42-43
5. वही, पृ.सं. 290
6. वही, पृ.सं. 296
7. वही, पृ.सं. 142
8. वही, पृ.सं. 217 - 218

सहायक ग्रन्थ

1. गिरिजाकुमार माथुर - कृष्णदत्त पालीवाल,
प्रकाशक : साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन
35, फ़िरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली, 110001
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य आन्दोलन - डॉ.
जयप्रकाश शर्मा, प्रकाशक: अमर प्रकाशन
डी-5, दुर्गा मन्दिर के पास इन्द्रापुरी, लोनी
गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश।
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन
सिंह, प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट
लिमिटेड, 7/31, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली -11002

◆ अतिथि प्राध्यापिका

वी.टी.एम. एन.एस.एस कॉलेज

धनुवच्चपुरम, तिरुवनन्तपुरम, केरल राज्य।

फोन : 9747053497

कबीर और सहज योग

• डॉ. लक्ष्मी.एस.एस



‘योग’ भारतीय संस्कृति की सबसे प्राचीन तथा सबसे समीचीन सम्पत्ति है। ‘योग’ एक आध्यात्मिक प्रक्रिया को कहते हैं, जिसमें शरीर, मन और आत्मा को एक साथ लाने का काम होता है। ‘योग’ की क्रियाओं और ‘योग’ के अंगों का स्पष्ट वर्णन सर्वप्रथम उपनिषदों में प्राप्त होता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है -

“त्रिरुन्नंत स्थाप्य समं शरीर
हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निरुध्य।
ब्रह्मोदुपेन प्रतरेत विद्वान्
स्रोतांसि सर्वाणी भयावहानि।”¹

योगी को शरीर के तीनों अंगों (छाती, गर्दन और सिर) को सीधा रखकर, इन्द्रियों को मन के साथ हृदय में रोककर, ओंकार की नौका पर सवार होकर भय को लानेवाले सारे प्रवाहों से पार उतरना चाहिए।

‘श्रीमद्भगवद्गीता’ में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को योग का उपदेश देते हुए योग के स्वरूप, योग की विधि, योग में अंगों के प्रयोजन और योग के फल का सुन्दर निरूपण किया है। भगवान ने योग को तप, ज्ञान और कर्म तीनों से श्रेष्ठ बतलाया है-

“तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि
मतोऽधिकः।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी
भवार्जुन।।”²

अर्थात् ‘योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ हैं, शास्त्र - ज्ञानियों से श्रेष्ठ हैं और सकाम कर्म करनेवालों से भी श्रेष्ठ हैं। इसलिए हे अर्जुन, तू योगी बन।’

जीवन को कर्मकाण्ड के जाल से मुक्तकर सहज रूप की ओर ले जाने का श्रेय नाथों को ही जाता है। भारतीय साधना के इतिहास में नाथों की साधना को महत्वपूर्ण स्थान है। इन नाथों में कबीर का प्रमुख स्थान है। महात्मा कबीर परम सन्तोषी, उदार, स्वतंत्र चेता, निर्भीक, सत्यवादी, सत्य और प्रेम के समर्थक, सात्विक प्रकृति, बाह्याडम्बर विरोधी, क्रान्तिकारी सुधारक आदि थे। वे मस्तमौला लापरवाह फक्कड़ फकीर थे। वे जन्मजात विद्रोही थे और उनमें एक अदम्य साहस एवं अखण्ड आत्मविश्वास मौजूद थे। वे प्रखर प्रतिभा तथा विलक्षण अथक, सशक्त व्यक्तित्व से सम्पन्न थे। नाथपंथियों के समान कबीर ने इन्द्रिय साधना, प्राण - साधना और मन साधना पर बल दिया था। नाड़ी साधन और कुंडलिनी साधन आदि बातें कबीर में मिलती हैं।

कबीरदास के समय में आडम्बर प्रेमी व्यक्ति धर्म पिपासुओं, जिज्ञासुओं को अपनी ऊटपटांग, ढोंगी तथा दूसरों को प्रभावित करनेवाले चमत्कारों से भ्रमित कर रहे थे। कबीर ने कहा -

“हे कोउ संत सहज सुख उपजै जाको

जप - जप देऊँ दलाली।

एक बूँद भरि देइ राम - रस, ज्यों भरि
देइ कलाली।”³

अर्थात् कोई संत इस जग में हैं जो मुझे राम रस की एक बूँद दे सकें। कबीर उन्हें दलाली के रूप में अपना सारा किया हुआ जप - तप और उससे मिलनेवाला पुण्य देने को राज़ी हैं। कबीर जानते थे कि इन ढोंगी लोगों ने समाज में अपनी स्थिति ढोंग और आडम्बर के बल पर बना रखी है। कबीर ने सहज का रस चखा था।

सहज योग को जीवन में सहज जगी आत्मानुभूति के पर्याय के रूप में लिया जा सकता है। यह साधना का वह रूप है जिसमें साधक को कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। ‘सहज होय सो होय’ (कबीर)। योग के इस सहज स्वरूप के पीछे अयत्नज साधना है। साधना तो है ही, किन्तु जो प्रयत्नपूर्वक न की जाये। इसमें कोई आडम्बर न हो, दिखावा न हो और सहज हो, जिसप्रकार साँस अपने आप आती जाती है और जिसप्रकार दिल की धड़कन चलती है अपने आप, उसी प्रकार हो। सहज की उनकी अवधारणा में ‘शब्द ब्रह्म’ है। ‘शब्दब्रह्म’ ही सहजशून्य है। क्योंकि ब्रह्म का स्वरूप सहज स्वीकार किया गया है। इसी शब्दब्रह्म या सहजशून्य में मन का लय होना ही सहज योग है। इस अवस्था को ‘उन्मनावस्था’ कहा जाता है। यही समाधि की अवस्था भी है -

“इहु मन ले जो उनमनि रहै, तै तीनि
लोक की बात कहै।”⁴

इस मानसिक अवस्था में तीनों लोकों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अर्थात् समाधि की

अवधारणा को भली प्रकार स्पष्ट होती है -

“संतो! सहज समाधि भली।
संई तो मलन भयो जा दिन
ते सुरत न अंत चली।।
संतो! आँख न मूँदू कान न रूँधूँ,
काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन मैं हँस-हँस देखूँ,
सुन्दर रूप निहारन।
संतो! कहूँ सो नाम सुनूँ सो सुमिरन,
जो कुछ करूँ सो पूजा।
गिरह - उद्यान एक सम देखूँ,
भाव मिटाऊँ दूजा।।
संतो! जहँ-जहँ जाऊँ सोई परिकरमा,
जो कुछ करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ देडवत्,
पूजूँ और न देवा।।
संतो! शब्द निरंतर मनुआ राता,
मलिन वचन का त्यागी।
उठत - बैठत कबहुँ न बिसरे,
ऐसी तारी लागी।
संतो! कहै कबीर यह उन्मुनि रहनी,
सो परगट कर गाई।
सुख - दुःख से इक परे परम सुख,
तेहिमें रहा समाई।।”⁵

कबीरदास के अनुसार सच्चा योग घर में ही, कार्य - स्थल पर ही संभव है। सहज ही शून्य में समा जाना, परम पद प्राप्त कर लेना ‘सहज योग’ है। कबीरदास सन्तों से कहते हैं - इस समाधि में न तो आँखे मूँदनी पड़ती हैं और न कान बंद करने पड़ते हैं, न काया को तरह - तरह से कष्ट देकर तप करने की आवश्यकता

होती है, बल्कि खुली आँखों ईश्वर के दर्शन करना, उसके सुन्दर रूप को हँस - हँसकर निहारना संभव होता है। भक्त जो कहता - बोलता है वही नाम - जप है। जो कुछ सुनता है, वही प्रभु का सुमिरन होता है और जो कुछ भी कार्य करता है वही सच्ची पूजा होती है। ऐसे में घर और बाग में कोई अंतर नहीं रहता। जहाँ - जहाँ भक्त जाता है, इस मन : स्थिति में वही उसके लिए भगवान की परिक्रमा है और जो कुछ करे वही सेवा होती है। सोने के लिए लेटना ही दंडवत् प्रणाम होता है। मलिन शब्दों का त्याग तथा अध्यात्म शब्दनाम में मन निरन्तर रत रहता है। उठते - बैठते कभी भी प्रभु को न भूलना। ऐसी तारी लगाना नज़रों में ईश्वर को लक्ष्य किए रहना - ऐसे में सुख-दुख के पार परम सुख और आनन्द में सदा समा जाना ही 'सहज योग' या 'सहज समाधि' में रहना है।

कबीरदास की 'सहज' और 'शून्य' की अवस्था योगियों की सहजावस्था से भिन्न इन अर्थों में भी है कि 'राम' ही उनकी सहजावस्था का आनन्द है। इस अवस्था पर पहुँचकर भक्त और राम एकमेक हो जाते हैं और दुई मिट जाती है। बस एक ही रह जाता है 'राम' -

“सहजै सहजै सब गए,
सुत बित कामिनी काम।
एकमेक ह्वै मिलि रह्यौ,
दास कबीरा राम।”⁶

सहजावस्था तक पहुँचने का मार्ग 'अनासक्ति योग' है। घर - परिवार में रहते मोह-माया से मुक्त होते जाने से, आसक्ति रहित होते जाने से मानसिक रूप में सहजावस्था उपलब्ध होती है। हिन्दी साहित्य

के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के भक्तकवि तथा रहस्यवादी कवि कबीरदास ने इसप्रकार कर्म और ज्ञान में भक्ति और योग का अद्भुत मेल करके 'सहज योग' को बल दिया है।

संदर्भ

1. पृ.सं. 14, पातञ्जल योग सार - डॉ. साधना दौनेरिया।
2. पृ.सं. 18, वही।
3. पृ.सं. 62, कबीर की चिन्ता - बलदेव वंशी।
4. पृ.सं. 63, वही।
5. पृ.सं. 64, वही।
6. पृ.सं.65, वही।

आधार ग्रंथ

1. कबीर की चिन्ता - बलदेव वंशी।
2. पातञ्जल योग सार - डॉ. साधना दौनेरिया।

सहायक ग्रंथ

1. योग, स्वास्थ्य और जीवन : विक्रम सिंह।
2. योगाभ्यास शिक्षा : आचार्य योगानन्द शास्त्री।
3. योग ध्यान एवं प्राणायाम के चमत्कार : रामराज यादव।
4. हिन्दी साहित्य युग एवं प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिव कुमार शर्मा।

♦ असिस्टन्ट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
पी.आर.एन.एस.एस.कॉलेज
मट्टनूर।

फोन : 9400856238

प्रगति-प्रयोगवादों के हस्ताक्षर : मुक्तिबोध

• डॉ.रंजीत रविशैलम



प्रयोगवादी हिन्दी साहित्य-सृजन का अपना एक इतिहास अवश्य है। जब रीतिकालीन साहित्य सामन्तों, पूँजीपतियों व अन्यो के संरक्षण में बढ़ रहा था तब व्यक्तिवादी 'उपभोक्ता संस्कृति' गुलामी की मानसिकता को बढ़ावा दे रही थी। इस समय स्वतंत्रता आन्दोलन के स्वत्व व चेतना ने उसका सीधा विरोध किया। सृजन के क्षेत्र में भी इस संघर्ष व द्वन्द्व का असर पड़ने लगा। उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप 'प्रगतिवादी' साहित्य आन्दोलन का प्रचार होने लगा। इसके पश्चात् नए नए प्रयोगों को लेकर साहित्य-सृजन (प्रयोगवाद) होने लगा, जैसे ;

“अंधेरे में डूबे हुए मकानों के छप्परों पार से
रौने की पतली - सी आवाज़
सूने में काँप रही, काँप रही दूर तक
कराहों की लहरों में पाशव प्राकृत
वेदना भयानक थरथरा रही है।
मैं उसे सुनने का करता हूँ यत्न
कि देखता क्या हूँ -
सामने मेरे
सर्दी में बोरे को ओढ़कर
कोई एक, अपने
हाथ - पैर समेटे
काँप रहा, हिल रहा!! वह मर जाएगा।”

उक्त पंक्तियाँ गजानन माधव मुक्तिबोध की हैं - प्रयोगवाद के हस्ताक्षर मुक्तिबोध की।

गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म श्योपुर, मध्यप्रदेश में 13 नवंबर 1917 को हुआ था। जन्म से ही वे मेधावी थे। मराठी उनकी मातृभाषा थी, पर उन्होंने साहित्य-सृजन भारत की 'राष्ट्रभाषा' हिन्दी में किया। वे एक प्रसिद्ध कवि, कुशल निबंधकार, कहानीकार व प्रतिष्ठित आलोचक थे। उनकी छवि एक संपूर्ण साहित्यकार की थी। पहली बार अज्ञेयजी द्वारा संपादित 'तारसप्तक' (सन् 1943) में मुक्तिबोध की कविताएँ प्रसिद्धि की सीढ़ी चढ़ीं। प्रगतिवादी चिन्तन के साथ नये प्रयोगों द्वारा 'कविता' को नवीनतम बनाने में वे जुड़ने लगे थे।

पाँचवें दशक के मध्य तक आते-आते 'प्रगतिवाद' का विरोध होने लगा था। 'प्रयोगवाद' के नाम पर आत्मान्वेषण और व्यक्तिवाद को प्रस्तुत किया जाने लगा। कई लोग इसकी शुरुआत 'तारसप्तक' के प्रकाशन काल से मानते हैं, लेकिन प्रयोगवाद की शुरुआत सन् 1947 में प्रकाशित 'प्रतीक' से माननी चाहिए। 'प्रगतिवाद' का सीधा संबंध 'मार्क्सवाद' (यथार्थवादी चिन्तन) से था। 'प्रयोगवाद' का संबंध कविता में नये - नये प्रयोगों से भी था। प्रयोगवाद के आगमन के कारणों पर प्रकाश डालते हुए मुक्तिबोध का कहना है कि "प्रयोगवाद के आगमन का कारण केवल मध्यवर्ग का अवसरवाद नहीं, प्रगतिवादी लेखकों की अपनी

गलतियाँ भी उसके ज़िम्मेदार और संपूर्ण मध्यवर्ग प्रयोगवाद के पक्ष में नहीं था। मध्यवर्ग के भी कई स्तर और प्रकार हैं, जो अपनी सामाजिक, आर्थिक स्थितियों के अनुसार प्रगतिवाद और प्रयोगवाद को मुक्ति प्रदान कर रहे थे। इनमें दो प्रकार तो स्पष्ट हैं- उच्च मध्यवर्ग और निम्नवर्ग। अपनी पुस्तक 'नई कविता का आत्मसंघर्ष' में वे लिखते हैं कि "मध्यवर्ग के क्षेत्र में प्रयोगवादी प्रवृत्ति की क्षीणता और दुर्बलता का ऐतिहासिक सत्य यही तो प्रकट करता है कि इस मध्यवर्गीय क्षेत्र को, एक ओर वैभव संपन्न उच्चवर्गीय प्रवृत्ति हथियाना चाहती है तो दूसरी ओर समाजवादी आदर्श का समर्थन करनेवाली शक्ति - सर्वहारा शक्ति - उसे प्रभाव में लाना चाहती है।"¹

साहित्य-सृजन के बारे में मुक्तिबोध को अपनी निजी मान्यताएँ व धारणाएँ थीं। वे कहते थे कि "हमें किसी भी साहित्य को तीन दृष्टियों में देखना चाहिए: एक तो यह है कि वह किन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक शक्तियों से उत्पन्न हैं, अर्थात् वह किन शक्तियों के कार्यों का परिणाम है, किन सामाजिक - सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का अंग है? दूसरे यह कि उसका अंतरूप क्या है?, किन प्रेरणाओं और भावनाओं से उसके अंतर्की तत्व रूपायित किए गये हैं? तीसरे उनके प्रभाव क्या हैं, किन सामाजिक शक्तियों ने उसका उपयोग या दुरुपयोग किया है और क्यों? साधारण जन के किन मानसिक तत्त्वों को उसने विकसित या नष्ट किया है?"² इन अवधारणाओं के साथ लिखी उनके विविध विधाओं में लिखे गये प्रसिद्ध ग्रंथों की सूची निम्नवत् है जो उनके निधन के पश्चात् प्रकाशित हुए हैं -

1. चाँद का मुँह टेढ़ा है (कविता संग्रह, 1964)

- भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

2. काठ का सपना (कहानी संग्रह, 1967) - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
3. सतह का सपना (कहानी संग्रह, 1971) - भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन।
4. नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध (निबंध संग्रह 1964) - विश्वभारती प्रकाशन।
5. एक साहित्यिक की डायरी (लेख संग्रह, 1964) - भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन।
6. विपात्रा (उपन्यास 1970) - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
7. नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (आलोचना, 1971) - राधाकृष्ण प्रकाशन।
8. कामायनी : एक पुनर्विचापर (आलोचना, 1973) - साहित्यभारती प्रकाशन।
9. भूरी - भूरी खाक धूल (कविता संग्रह, 1980) - राजकमल प्रकाशन।
10. समीक्षा की समस्याएँ (समीक्षा, 1982) - राजकमल प्रकाशन।
11. प्रतिनिधि कविताएँ - (संपादक अशोक वाजपेई, 1984) - राजकमल प्रकाशन।
12. मुक्तिबोध रचनावली (संपादक: नेमीचन्द्र जैन, 6 भाग 1980) - राजकमल प्रकाशन।
13. अंधेरे में (अंग्रेज़ी अनुवाद 2001) - रेनबो प्रकाशन।
14. डबरे पर सूरज का बिंब (कविता 2002) - नेशनल बुक ट्रस्ट।
15. मुक्तिबोध की कविताएँ (2004) - साहित्य अकादमी प्रकाशन।

इन कालजयी रचनाओं व चिन्तन के सबब मुक्तिबोध का हिन्दी साहित्य जगत् में अप्रतिम

स्थान है। तरीके का 'खुलापन' उनके वक्तव्यों व लेखन में हम देख सकते हैं। उदाहरण के तौर पर एक संदर्भ यहाँ प्रस्तुत है - 'तारसप्तक' (1943) के प्रकाशित होने के बाद उनको ऐसा लगा कि उनके बारे में ठीक ठीक प्रस्तुति नहीं हुई है; अतः उनकी प्रतिक्रिया ऐसी थी - "यहाँ यह स्वीकार करने में मुझे संकोच नहीं है कि तारसप्तक के लिए लिखा वक्तव्य मेरे अपमानित और अवमानित चरित्र का ही आख्यान है। दास्तोवस्की के बंधुत्व की छाया में मैंने अपनी ही जीवनी को परखा और स्वीकार किया था - मेरी हर विकास स्थिति में मुझे घोर असंतोष रहा और है। मानसिक द्वंद्व मेरे व्यक्तित्व में बद्धमूल है। यह मैं निकटता से अनुभव करता आ रहा हूँ कि जिस भी क्षेत्र में मैं हूँ वह स्वयं अपूर्ण है, और उसका ठीक - ठीक प्रकटीकरण भी नहीं हो रहा है। फलतः गुप्त अशांति मन के अंदर घर किए रहती है।"³

'अंधेरे में' कविता उनकी कालजयी रचना है। यह कविता आज भी अनुसंधाताओं पर कुतूहल सा मच रही है। इस कविता के बारे में मुक्तिबोध स्वयं कहते हैं - "अंधेरे में' में मैंने अपने देश के ठोस सवालियों को एक - एक करके रखा है। जो एक ही बार पूरा भोजन निगल जाने की गलतियाँ जीवन भर सृजन में करते रहे हैं, उनको यह कविता सहज ब्योरा लगेगी। हाँ, वाल्मीकी, व्यास, कबीर, तुलसीदास, और वाल्ट हिक्टमैन - सा जीवन प्रसंगों का ठोस ब्योरा मैं रचता रहा हूँ। मुझे क्लासिक कविता का यही शिल्प प्रिय है।"⁴ महान साहित्य सेवी मुक्तिबोध ने अपने अल्प काल के जीवन में - साहित्य जगत् को संख्या की दृष्टि में भले ही कम पुस्तकें दी हों, पर उन पुस्तकों में निहित 'मानवीय तथ्यों' व दर्शनों का

खुलासा आज भी आदीपित नहीं है। इस महान साहित्य सेवी का 11 सितंबर 1964 को स्वर्ग गमन हुआ। उनके सम्मानार्थ 'मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्' हर साल 'मुक्तिबोध पुरस्कार' प्रदान करती है। उनके हृदयोद्गार स्वरूप निम्नवत् पंक्तियाँ सतत अनुवाचकों व साहित्य प्रेमियों के दिल में गूँज उठती हैं -

“ऊँचाई की गंध भरी ज़िंदगी जीने से
ख्यालों की धुंध नारी ज़िंदगी जीने से
बेहतर है, गरम धूपवाले मैदान के
सीने पर अपना पसीना बहाया जाए!!”

संदर्भ

1. नई कविता का आत्मसंघर्ष - मुक्तिबोध, पृ.सं. 107
2. वही, पृ.सं. 103
3. मुक्तिबोध की जीवनी-विष्णुचन्द्र शर्मा, पृ.सं.127
4. वही, पृ.सं. 382

सहायक ग्रंथ

1. मुक्तिबोध की जीवनी - विष्णुचन्द्र शर्मा - संवाद प्रकाशन।
2. नई कविता का आत्म संघर्ष - मुक्तिबोध - संवाद प्रकाशन।
3. अंधेरे में (कविता)
4. मुक्तिबोध की अन्य रचनाएँ
5. मुक्तिबोध रचनावली - सं. नेमिन्द्रजैन - राजकमल प्रकाशन।

♦ ए.एफ.एस. (वायुसेना विभाग),
महाराजपुर, ग्वालियार - 474 020, मध्यप्रदेश।
मोबाइल : 7247243100

पुस्तक समीक्षा

• डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

(1) केरल के हिन्दी साहित्य का इतिहास (लेखिका- डॉ.पी.लता, प्र.लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद)।

केरल में सृजित हिन्दी साहित्य के भूत और वर्तमान को समेटते हुए तथा भविष्य की दिशाओं का निर्देश करते हुए डॉ.पी.लता ने 'केरल के हिन्दी साहित्य का इतिहास' शीर्षक से एक नये ग्रंथ की रचना की है। यह उनके कई सालों की सतत साधना और शोध का सुपरिणाम है। इस इतिहास रचना में केरल की प्रारंभिक रचनाओं से लेकर अद्यतन रचनाओं तक का उल्लेख, विवेचन - विश्लेषण तथा मूल्यांकन हुआ है। उन्नीसवीं शती के केरल के महाराजा स्वातितिरुनाल के हितुस्तानी गीतों से शुरू होकर इक्कीसवीं शती के द्वितीय चरण के मध्य तक फैली लंबी साहित्य-यात्रा का प्रौढ़, गंभीर और सम्यक समाकलन इसमें हुआ है।

केरल में सृजित हिन्दी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास ही डॉ.पी.लता ने अपने इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया है। पाँच खंडों में केरल में हिन्दी में विरचित साहित्य का समग्र विवरण दिया गया है। इस ग्रंथ में मौलिक साहित्य के साथ-साथ अनूदित साहित्य का विवरण भी समाहित है। अन्यान्य अध्यायों में व्याकरण, कोश जैसे साहित्येतर विषयों पर विरचित कृतियों का विवरण, केरल की हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, केरल में हिन्दी प्रचार के प्रारंभ और विकास का विवेचन, केरल के कॉलेजों-विश्वविद्यालयों में हिन्दी अध्ययन आदि के सम्यक विवरण प्रस्तुत हुए हैं। अंत में केरल के हिन्दी लेखकों का सचित्र संक्षिप्त परिचय भी संलग्न है। कुल मिलाकर यह कृति केरल में सृजित हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं की रचनाओं के सम्यक परिचय के साथ - साथ केरल में हिन्दी से जुड़ी समस्त सामग्री एकत्रित करती है।

केरलीय हिन्दी लेखकों द्वारा साहित्य की विविध विधाओं में विरचित कृतियों के संकलन का कार्य

सचमुच कष्टसाध्य है। पुस्तक रूप में प्रकाशित कृतियों के विवेचन, विश्लेषण तथा मूल्यांकन की ओर लेखिका की सजग दृष्टि रही है। केवल पुस्तक रूप में नहीं, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री का भी संकलन प्रस्तुत कृति में हुआ है। डॉ.पी.लता की यह कृति केरल में हिन्दी भाषा और साहित्य विषयक समग्र जानकारी प्रदान करनेवाला इतिहास ग्रंथ है।

आजकल विश्वविद्यालयों के स्नातक एवं स्नातकोत्तर हिन्दी पाठ्यक्रमों में 'दक्षिण का हिन्दी लेखन' विषय बन चुका है। ऐसी स्थिति में यह कृति अवश्य ही एक संदर्भ ग्रंथ की भूमिका निभा लेगी। केरल में हिन्दी भाषा और साहित्य विषयक शोध कार्य में जुड़े छात्रों के लिए भी यह उपयोगी ग्रंथ रहेगा। सर्वोपरि हिन्दी साहित्य के इतिहास निर्माताओं के लिए भी यह सहायक ग्रंथ के रूप में काम आयेगा।

डॉ.पी. लता ने केरल में हिन्दी साहित्य की अद्यतन सामग्री प्रस्तुत करके अपने इतिहास ग्रंथ को यथासंभव समग्र, संपूर्ण और प्रामाणिक बनाया है। लताजी केरल की हिन्दी लेखिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं तथा निरंतर साहित्य सेवा में निरत हैं। पारिवारिक तथा प्राध्यापकीय ज़िन्दगी की व्यस्तताओं के बीच भी समय निकालकर अप्रतिम साहित्य-सर्जना करनेवाली लताजी की कितनी भी सराहना करें कम है। इसके पूर्व उनके द्वारा रचित 'केरल की हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास', 'प्रयोजनमूलक हिन्दी', 'हिन्दी भाषा के विविध रूप', 'पत्रकारिता' जैसी कृतियाँ प्रकाशित होकर केरल में ही नहीं, केरल के बाहर विद्वज्जनों की बीच भी खूब चर्चित रही हैं। विविध विश्वविद्यालयों एवं हिन्दी संस्थाओं के पाठ्यक्रम में भी उनकी रचनाएँ संलग्न हैं। कुछ संस्थाओं द्वारा इनमें कतिपय कृतियाँ पुरस्कृत भी हुई हैं।

‘केरल के हिन्दी साहित्य का इतिहास’ शीर्षक यह नवीनतम कृति हिन्दी पाठकों की चर्चाओं के केन्द्र में रहेगी, इसमें कोई संदेह नहीं। केरल के हिन्दी साहित्य के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु अध्येताओं के लिए भी यह ग्रंथ अवश्य ही उपादेय सिद्ध होगा। ऐसे एक प्रामाणिक इतिहास ग्रंथ की रचना करनेवाली विदुषी लेखिका डॉ.पी.लता वाकई बधाइयों की पात्र हैं। इनकी साहित्य साधना निरंतर जारी रहे!

(2) मंजीर (लेखिका : डॉ. धन्या.एल, प्र. परिधि पब्लिकेशन्स, तिरुवनन्तपुरम)।

डॉ.पी.लता

विचारों - भावों की अभिव्यक्ति की सहज साहित्य विधा है ‘निबंध’। निबंध - लेखन के लिए विषय - चयन के बाद उसमें लेखक की बुद्धि, कल्पना, हृदय तथा शैली का समुचित योग भी होने से प्रभावी निबंध की रचना होती है। ‘मंजीर’ विविध विषयक - साहित्यिक, संस्था संबंधी, हिन्दी भाषा संबंधी तथा वैज्ञानिक - 21 निबंधों का संकलन है। इसमें संकलित निबंध लेखिका के विषयों को गंभीरता से देखने - परखने तथा चिन्तन - मनन करने की अपूर्व क्षमता के परिचायक हैं।

इस संकलन के ‘साहित्यिक निबंध’ नामी साहित्यकारों की रचनाओं पर तैयार किये गये हैं। हिन्दीतर क्षेत्र केरल में जन्मे तथा श्रेष्ठ हिन्दी ललित निबंधकार के रूप में चर्चित हुए स्वर्गीय डॉ.एन.ई. विश्वनाथ अय्यर की रचनाओं पर रचा गया निबंध है ‘अय्यरजी की प्रिय साहित्य विधा - ललित निबंध’। आजकल सबकहीं दलित साहित्य की बखूबी चर्चा हो रही है। ‘दलित आत्मकथा हिन्दी और मलयालम में’ में हिन्दी और मलयालम के दलित साहित्यकारों की आत्मकथाओं पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दी दलित आत्मकथाओं में अंकित नारियों पर लिखा गया निबंध है ‘हिन्दी दलित आत्मकथाओं में चित्रित स्त्री की ‘स्थिति’। मलयालम के हास्यकवि तथा तुल्लल साहित्य के प्रणेता श्री कुञ्चन नंपियार के काव्यों पर तैयार

किया गया निबंध है ‘हास्य साहित्य के उपजाता कुंचन नंपियार।’ ‘हिन्दी यात्रा - साहित्य बीस सौ तक’ सन् 2000 तक हिन्दी में प्रकाशित यात्रावृत्तों पर तैयार किया गया निबंध है। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में समाजवादी जीवन - दृष्टि की स्थापना करनेवाले राहुल सांकृत्यायन की स्त्री पात्रों पर लिखा गया निबंध है ‘राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों में स्त्री - विमर्श।’ भारतीय संस्कृति के अमर गायक : श्री.मैथिलीशरण गुप्त’ में राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त को भारतीय संस्कृति का अमर गायक स्थापित किया गया है। ‘तीसरा सप्तक’ के कवि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं के भावपक्ष पर तथा केदारनाथ सिंह के ‘ज़मीन पक रही है’ काव्य पर लिखे निबंध हैं क्रमशः ‘सत्य के प्रबल समर्थक कवि स्व.श्री.सर्वेश्वरदयाल सक्सेना’ और ‘जनपदीय उपस्थिति के कवि केदारनाथ सिंह के काव्य ‘ज़मीन पक रही है’ का मूल्यगत मूल्यांकन’। केरलीय हिन्दी कवि डॉ.एन.चन्द्रशेखरन नायर द्वारा चिरंजीवियों पर तैयार किये गये ‘चिरजीव’ काव्य का अध्ययन है ‘भारतीय संस्कृति के उपासक डॉ.एन.चन्द्रशेखरन नायर का चिरजीव महाकाव्य। केरलीय हिन्दी लेखक डॉ.एन.रामन नायर के सागर की गलियाँ’ उपन्यास की आंचलिका का विश्लेषण सागर की गलियाँ : आंचलिकता के संदर्भ में’ किया गया है। ‘श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास राग दरबारी में जनवादी चेतना’ में ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता श्रीलाल शुक्ल के ‘राग दरबारी’ उपन्यास के कथ्य पक्ष का विश्लेषण करके उसे जनवादी उपन्यास कहा गया है।

इस संकलन के उपर्युक्त ‘साहित्यिक निबंधों’ के अलावा साहित्येतर विषयों पर लिखे निबंध भी प्रभावी बने हैं। आधुनिक समाज में कामकाजी महिलाओं की लाचारी पर अपनी नारी पात्रों के ज़रिए कथाकारों ने प्रकाश डाला है। इस विषय पर लिखा गया निबंध है ‘नवम दशक की कामकाजी नारी की कथा और व्यथा’। विविध कारणों से पर्यावरण का प्रदूषित हो जाना एक प्रमुख समाजिक समस्या है। “प्लास्टिक संकट के निवारण

केलिए जैव प्लास्टिक' एक वैज्ञानिक निबंध है। जनसंचार माध्यमों पर 'मीडिया की भाषा' और 'मीडिया और हिन्दी भाषा की संस्कृति एवं सभ्यता' निबंध लिखे गये हैं।

'प्रयोजनमूलक भाषा' तथा 'विश्व भाषा' के रूप में हिन्दी के विकास में कुछ संस्थाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। ऐसी प्रमुख संस्थाएँ हैं 'केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय' तथा 'केन्द्रीय हिन्दी संस्थान'। इन संस्थाओं की हिन्दी सेवा पर तैयार किये गये साहित्येतर निबंध हैं 'हिन्दीतर क्षेत्र में हिन्दी का विकास और केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय' और 'राजभाषा हिन्दी के विकास में केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की भूमिका।'

मैं 'मंजीर' निबंध संकलन के निबंधों की लेखिका डॉ.धन्या.एल को हार्दिक बधाइयाँ तथा शुभ कामनाएँ देती हूँ। मेरा विश्वास है कि हिन्दी के अध्येता इस उपयोगी ग्रंथ को सहर्ष स्वीकार करेंगे।

♦ (पूर्व अध्यक्षा, हिन्दी विभाग सरकारी वनिता कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम) आरती, टी.सी. 14/1592, फोरेस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काट्टु, तिरुवनन्तपुरम -14।

2017-मुक्तिबोध जन्म शताब्दी वर्ष



गजानन माधव मुक्तिबोध - बीसवीं सदी के अग्रणी कवि, समीक्षक, कहानीकार तथा समाज चिंतक।

जन्म - 13 नवंबर 1917; श्योपुर जिला, मध्यप्रदेश।

निधन - 11 सितंबर 1964 ; 46 वर्ष की आयु में।

(पृ.सं. 10 के आगे) सही उत्तर चुनें

7. तुलसीदास के पिता का नाम क्या है?
(अ) आत्माराम (आ) वेणीमाधव
(इ) रघुवरदास (ई) नाभादास
8. 'भक्तमाल' का रचनाकार कौन है?
(अ) गोकुलनाथ (आ) नाभादास
(इ) रघुवरदास (ई) प्रियादास
9. हिन्दी साहित्य में भक्ति के उदय को पराजित मनोवृत्ति का परिणाम किसने माना?
(अ) आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
(आ) बाबू गुलाबराय
(इ) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
(ई) रामकुमार वर्मा
10. रामभक्त कवियों ने अपने और राम के बीच किस भाव को स्वीकार किया?
(अ) दास्यभाव
(आ) सेवक - सेव्य भाव
(इ) सखा भाव (ई) वत्सल्य भाव

सही उत्तर

1. अ 2. ई 3. इ 4. अ 5. आ
6. ई 7. अ 8. आ 9. आ 10. अ

सूचना

NET (हिन्दी) तथा Spoken Hindi की कक्षाओं में प्रवेश पाने को इच्छुक व्यक्ति संपर्क करें -
फोन : 9946253648, 0471 - 2332468

केरल की हिन्दी कवयित्री स्वर्गीय डॉ.जी.कमलम्मा



केरल की हिन्दी कवयित्री डॉ.जी.कमलम्मा 4 जुलाई 2017 को परलोक सिधारीं।

कमलम्माजी का जन्म 12 मई 1935 को वर्कला (तिरुवनन्तपुरम)

में हुआ। पिता स्व. आर.नीलकण्ठ पिल्लै थे। माता स्व. के.गौरी अम्मा थीं। पति स्व. इटमना नारायणन पोट्टी थे। कमलम्माजी ने सन् 1956 से सन् 1990 तक विविध विद्यालयों में हिन्दी में अध्यापन-कार्य किया। फिर दीर्घकाल केरल हिन्दी प्रचार सभा के अध्यापक प्रशिक्षण केंद्र में प्राध्यापिका रहीं। 'शास्त्र साहित्य परिषद्' तथा 'साक्षरता मिशन' में भी सेवा की। फिलहाल पेट्टा (तिरुवनन्तपुरम) में 'अक्षरवीथी जयरंग' में अपनी बेटी के साथ रहती थीं कि 4 जुलाई 2017, मंगलवार को 82 वर्ष की आयु में निधन हुआ।

'साठोत्तर हिन्दी एवं मलयालम कविता की नई प्रवृत्तियाँ - एक तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर पी एच.डी की उपाधि प्राप्त की। हिन्दी में बी.एड की उपाधि भी प्राप्त की। हिन्दी और मलयालम में मौलिक तथा अनूदित रचनाएँ कीं। 'केरल हिन्दी साहित्य अकादमी पुरस्कार' और 'एस.बी.टी पुरस्कार' प्राप्त हुए।

तीन संतानें हैं - बड़ी बेटी एन.के.गीता (सेवानिवृत्त, बी.एस.एन.एल), दूसरी बेटी एन.के.गंगा (स्कूल में अध्यापिका) और छोटा बेटा एन.के.गिरीश (प्रिंसिपल करेस्पोंडेंट, मनोरमा न्यूज़) आदि।

• डॉ.पी.लता

मलयालम में प्रकाशित डॉ.जी.कमलम्मा का कविता संकलन है 'पांचजन्यम्'। डॉ.जी.कमलम्मा की दो काव्य रचनाएँ हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं। समय - समय पर लिखी 47 कविताओं का संकलन है 'बेड़ा पार करना है' (1999; प्रकाशक: स्वयं कवयित्री- डॉ.जी.कमलम्मा; मुद्रण : राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, तिरुवनन्तपुरम)। इसे केरल हिन्दी साहित्य अकादमी का एस.बी.टी. पुरस्कार प्राप्त हुआ। डॉ.एन. रवीन्द्रनाथ ने इस संकलन की कविताओं की विशेषताएँ 'प्रस्तुति' शीर्षक में इन शब्दों में प्रकट की हैं। "कवयित्री अत्यंत दीप्त अनुभवों को उदात्त काव्य बिंबों के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। यही कारण है कि इस संकलन की कुछ कविताओं में संघर्ष-शक्ति को पहचानने की तीव्र कामना है तो कुछ कविताओं में ममतामयी माता के हृदय के उद्गार।" 'महात्मा', 'गाँधी हँसते हैं' जैसी गाँधी विषयक कविताओं में कवयित्री का देशप्रेम प्रतिबिंबित होता है। 'महात्मा' कविता में महात्मा गाँधी के महान आदर्शों से दूर रहनेवाली नयी पीढ़ी को देखकर कवयित्री का दुःख देखिए-

“खादी की पोशाकों पर
अन्यायशील न्याय महलों पर
मदिरालय की दीवारों पर
भद्दे वेश के युवकों पर
खोई भारत नीति पर
कवि का कण्ठ अब रुद्ध गया
आवाज़ यहीं पर रुकी तभी
बोले कवि, हाय किधर रहे?
गाँधी महात्मा गये किधर?
प्यारा भारत गया कहाँ?” (पृ.सं.23)

‘झांसीवाली राणी’ एक उद्बोधक कविता है। ‘चन्दा मामा’, ‘राह के फूल’, ‘अहम प्रकृति’, ‘बरगद बूढ़ा’, ‘प्रकृति रूढ़ी तो’ आदि प्रकृति को विषय बनाकर लिखी गई कविताएँ हैं। ‘असीम’, ‘कौन’ आदि कविताएँ रहस्यमयी भावों की हैं। ‘अंत’ दार्शनिक कविता है। इसमें बिंबों के सहारे जीवन रूपी नौके के अंत का वर्णन किया गया है। ‘भगवान के रक्षक’ और ‘भगवान पुलिस स्टेशन में’ व्यंग्य कविताएँ हैं। ‘भगवान के रक्षक’ कविता का व्यंग्य है कि भक्तों के रक्षक भगवान के रक्षकों के रूप में द्वारपालक भी हैं। प्रारंभिक पंक्तियाँ ही व्यंग्यात्मक हैं, जैसे -

“रक्षक भगवान का, पुलिस?
वलय पुलिस का काट
कौन आये मंदिर में?” (पृ.सं.79)

‘भगवान पुलिस स्टेशन में’ कविता में व्यंग्य यह है कि मंदिर तोड़कर चोरी करनेवाले चोर सिक्के, गहने, अमूल्य रत्न-मुकुट सब छीनकर भगवान की प्रतिमा को कहीं फेंक देते हैं। ‘कमल मंदिर’ कविता में ‘श्वेतकमल मंदिर’ के आचारों पर व्यंग्य किया गया है। पारिस्थितिक संकट पर प्रकाश डालनेवाली कविता है ‘चंपल के जंगल’। इसमें कवयित्री ने डाकू बसे चंपल के घने जंगल का, वर्णन करने के बाद रेलगाड़ी से यात्रा करनेवाले यात्रियों के वार्तालाप के संदर्भ के द्वारा चंपल की वर्तमान स्थिति का चित्रण यों किया है -

“आया चंपल’ कहा किसी ने
नेत्र फैलाये, बाहर मैं ने।
‘कहाँ चंपल?’
‘दीखता न’?
‘यही तो है न चंपल?’
‘कौन-सा चंपल?’
जंगल तो न दीखता।” (पृ.सं. 76)

फिर फिलहाल के चंपल के जंगल का चित्रण कवयित्री ने इन शब्दों में किया है -

“महावृक्ष? लताकुंज?
झाड़ी भी तो है नहीं।
सूखी घास तो थी
शायद कंटिली थी।” (पृ.सं. 76)

अग्नि में शांत (2005, प्रकाशक : स्वयं कवयित्री - डॉ.जी.कमलम्मा, अक्षरवीथी, पेट्टा, तिरुवनन्तपुरम) खंडकाव्य है। इसके आठ सर्ग इस प्रकार हैं - आत्मरोदन, अज्ञता, अभिशाप, अहम्, अंधकार, महाभारत की अशांति, आत्मज, अग्नि में शांत आदि। इस खंडकाव्य में महाभारत की कुंती तथा ज्येष्ठपुत्र कर्ण का हृदयस्पर्शी चित्रण मिलता है। कुंती का आत्मसंघर्ष कविता का केन्द्रबिन्दु है। इसे सन् 2007 का ‘केरल हिन्दी साहित्य अकादमी पुरस्कार’ प्राप्त हुआ। कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद कुन्ती वानप्रस्थ केलिए धृतराष्ट्र, गाँधारी, विदुर, संजय आदि के साथ चली जाती है। कुन्ती केलिए कर्म मुख्य है। युधिष्ठिर से उसके ज्येष्ठपुत्र कर्ण के बारे में बताने के बाद कुंती कहती है -

“हाँ मैं जानती हूँ पुत्र
अगर बताती मैं पहले
यह कुरुक्षेत्र कभी न होता
यह हत्याकांड कभी न होता।” (पृ.सं.6)

वानप्रस्थ के समय वह बचपन से लेकर बीती घटनाएँ सोचती है। अरण्यवास केलिए जब उसके प्रिय पुत्र गये थे तब उसका मातृहृदय दुःखी हुआ।

“चीख उठा वह मातृत्व
इन सब बदकिस्मती का
दायित्व किसका, सिर्फ मेरा। (पृ.सं.64)

कुन्ती का जीवन सदा संघर्षरत रहा, पति के साथ रहते वक्त तथा पति-वियोग के बाद भी। द्रौपदी-वस्त्राक्षेप के समय निस्सहाय कुन्ती का मन दुःखी होता है, पांडवों के अज्ञातवास के समय भी। वह अपने को अपने ज्येष्ठपुत्र कर्ण को हुए अपमान का उत्तरदायी मानती है। वह अपने पुत्र अर्जुन की जान

की भीख माँगने कर्ण के पास आती है और कर्ण की जन्म कथा बता देती है। तब कर्ण के इस सवाल के सामने वह निरुत्तर होती है -

“सूत पुत्र कह मेरा अपमान जब किया पांडव ने सूर्य पुत्र कहनेवाली यह माता कहाँ गयी थी?” कुन्ती का मन सदा अशांत रहता है, जो अंत में घृतराष्ट्र और गाँधारी के साथ भभकती ज्वाला में जलकर भस्म हो जाता है। चाहे तो माता कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर आदि के साथ राजसी जीवन बिता सकती थी। किन्तु वह इसको तैयार नहीं होती।

डॉ.जी. कमलम्मा की ‘केरल ज्योति’ पत्रिका में प्रकाशित कविताएँ हैं अपरिचित, किनारा आदि (अंक: अक्तूबर 2007)।

आदि शंकराचार्य के बाद भारत के आध्यात्मिक जगत् में प्रज्वलित आध्यात्मिक गुरु थे श्रीनारायण गुरु (1854 - 1928)। उनके आध्यात्मिक काव्य ‘आत्मोपदेश शतकम्’ (मलयालम) का डॉ.जी. कमलम्मा ने हिन्दी में अनुवाद किया। इस ग्रंथ में कुल 100 पद्य छंद हैं। हिन्दी अनुवाद का नाम है ‘आत्मोपदेश शतक’, जो सन् 1990 में ‘डी.के. प्रिण्टवेल्ड प्रा.लि., नई दिल्ली’ द्वारा प्रकाशित हुआ। कमलम्मा जी ने क्रम - संख्या देकर बायें पृष्ठ में मलयालम पद्य देवनागरी लिपि में तथा दायें पृष्ठ में उनके हिन्दी अनुवाद दिये हैं (पृ.सं. 10 से 35 तक)। पृ.सं. 37 से 156 तक इन 100 हिन्दी अनुवादों को क्रमगत रूप से देकर श्रीनारायण प्रसाद की विस्तृत मलयालम व्याख्या और प्रस्तुत मलयालम व्याख्या का डॉ.कमलम्मा का हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है। कमलम्मा जी के शब्दों में “इस ग्रंथ में अद्वैत के संपूर्ण चिन्तन को सिर्फ दर्शन क्षेत्र की सीमा में न रखकर जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त कराने का उत्तम प्रयास किया गया है। इस

प्रकार धर्म - तत्व, सामाजिक सिद्धांत, उपासना, कर्म, भक्ति सबकुछ इसकी सीमा में समाहित है” (भूमिका)।

तुलसीदास के ‘रामचरितमानस’ का ‘तुलसीदासरामायण’ नाम से डॉ.जी.कमलम्मा ने गद्यानुवाद किया। 448 पृष्ठों के इस अनुवाद को पुस्तक रूप में ‘ऑटेंटिक बुक्स, टी.सी. 4/1890, पंडिट कॉलनी, काउडियार, तिरुवनन्तपुरम’ ने जुलाई 2011 में प्रकाशित किया है। पहले यह ‘आर्ष ज्योति’ पत्रिका में खंडशः प्रकाशित हुआ था।

‘के.एल.पॉल की प्रतिनिधि कहानियाँ’ (2012, प्रकाशक : जवहार पुस्तकालय, मथुरा) के.एल.पॉल की 16 मलयालम कहानियों के विविध अनुवादकों द्वारा किये गये हिन्दी अनुवादों का संकलन है। इसमें ‘स्मारिका’ कहानी का अनुवाद डॉ.जी.कमलम्मा ने किया।

डॉ. नत्थन सिंह ने डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर की जीवनी ‘केरळीय प्रेमचंद’ नाम से लिखी। इसका मलयालम में अनुवाद ‘केरळत्तिन्टे प्रेमचन्द’ (2007, केरल हिन्दी साहित्य अकादमी) नाम से डॉ. जी. कमलम्मा और श्रीमती प्रिया यू.एन ने मिलकर किया।

‘राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), नई दिल्ली’ के आर्थिक सहयोग से हाइस्कूल के छात्रों के लिए, केरल हिन्दी प्रचार सभा द्वारा सन् 2009 में प्रकाशित ‘ग्रंथालय पुष्पमाला’ की प्रस्तकों की एक लेखिका डॉ.जी.कमलम्मा थीं।

हिन्दी साहित्य को डॉ.जी.कमलम्मा की देन महत्वपूर्ण है। सफल हिन्दी कवयित्री तथा अध्यापिका स्वर्गीय डॉ.जी.कमलम्माजी को ‘अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी’ श्रद्धांजलियाँ अर्पित करती है।

मुद्रक, स्वामी तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरेस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित।

Printed, owned & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14, Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha.